Chap-3

तृतीय अध्याय

डा० भारती के समसामयिक साहित्य की विकास-भूमियाँ

तृतीय अध्याय

डा० भारती के सम-सामयिक साहित्य की विकास-भूमियाँ

(क) काव्य साहित्य : सामयिकता से तात्पर्य, विभिन्न मत तथा निष्कर्ष :

डा० धर्मवीर भारती के समकालीन साहित्य की विकासशील गतिविधियों पर दृष्टिपात करने से पूर्व समसामयिकता से गृहीत आशय को भी हृदयंगम कर लेना विषय-संगति के औचित्य के लिए आवश्यक प्रतीत हो जाता है। प्राय: समसामयिकता का विचार आधुनिकता के अत्यधिक निकटवर्ती जीवन संदर्भों के आलोक में ही किया जाता है। वैसे तो आधुनिकता किसी भी काल विशेष की सीमा तक आबद्ध रहनेवाली वस्तु नहीं है। वह सदैव स्वस्थ और सप्राण रहनेवाली जीवनदृष्टि की द्योतक है। इस दृष्टि से आधुनिकता जीवन के बाहरी आवरणों, दृष्टिकोणों और क्रिया-कलापों तक ही सीमित नहीं रहती वरन् वह मन के उदात्त एवं चिर उर्वर संस्कारों पर निर्भरित रहती है। अतएव आधुनिकता वस्तुत: अपने युग-विशेष की उपज होते हुए भी उससे परे होकर युग-युग तक जीवन की स्वस्थ परम्परा के प्राण-पोषक तत्वों को भी अपने कलेवर में सिमेट कर ही आगे बढ़ सकती है।

सम-सामयिकता आधुनिकता का ही वह विशिष्ट भाव बोध है जिसके द्वारा एक दीर्घ युग में निहित परिवेश विशेष की जीवन से सन्निकटता वा समीपस्थता की गहनतम अनुभूति होती है। उक्त तथ्य को आधुनिकता के संदर्भ में और भी अधिक रूप से स्पष्ट किया जा सकता है। यथा- "आधुनिकता एक युग विशेष का भाव है। जबकि समकालीनता वर्तमान से उत्पन्न 'स्थिति-विशेष' का आयाम है।-------आधुनिकता का आयाम विस्तृत है, समसामयिकता की सीमा संकीर्ण और संकुचित है।----- समसामयिकता में एक ओर जीवन के प्रति क्रियाशील होने का भाव है तो दूसरी ओर

अतीत और भविष्य दोनों से अलग हटकर युग बोध की स्थिति विशेष अथवा क्षण विशेष के प्रति ममत्व का भाव है।[1] इससे स्पष्ट है कि समसामयिकता आधुनिकता की अपेक्षा सर्वाधिक रूप से अपने निकटवर्ती समय वा क्षण की सक्रियता एवं तात्कालिकता से जनित तीव्रतम संवेदनाओं तथा अनुभूतियों से प्राणान्वित व अनुस्यूत रहती है। अत: यह कहा जा सकता है कि समकालीनता में प्रवर्तमानकालीन जीवन से प्रत्यक्ष साक्षात्कार का बोध सन्निहित रहता है। हमारा मन अपने समय के मानव मूल्यों से अत्यधिक प्रभावित होता है। प्राय: सभी समकालीन साहित्यकारों ने अपने समय की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक, वैयक्तिक आदि सामयिक समस्याओं तथा परिस्थितियों से प्रभावित होकर उन्हें नये दृष्टिकोण के अनुरूप व्याख्यायित व रूपायित करने का प्रयत्न किया है। पुरातनता के प्रति विद्रोह और नवीनता के प्रति आग्रह का स्वर ही सामयिक यथार्थ का प्रमुख पहलू है। सामयिकता को आधुनिकता के परिवेश में देखना हो तो उसे 'अत्याधुनिकता' कहा जा सकता है जिसके अन्तर्गत निम्नांकित प्रवृत्तियों की सर्वोपरिता दृष्टिगोचर होती हैं। यथा (1) धर्म निरपेक्षीकरण की प्रवृत्ति (2)अन्तर्राष्ट्रीय रुचि के समाहार की प्रवृत्ति(3) परम्परा-भंजन की प्रवृत्ति(4) पाश्चात्यीकरण की प्रवृत्ति (5) शहरीकरण की प्रवृत्ति (6) वैज्ञानिक रुचि के विकास की प्रवृत्ति(7) विलम्बित विवाह और(8) नई नैतिकता की स्थापना की प्रवृत्ति।[2] अतएव यह स्पष्ट है कि आधुनिकता बोध और समसामयिकता बोध दोनों ही से आज तथाकथित प्रवृत्तियों का भाव व्यंजित होता है। यही कारण है कि समसामयिकता का प्रश्न भी आधुनिकता के साथ ही उठाया जाता है। आधुनिकता और समसामयिकता का बोध परस्पर एक दूसरे से प्रेरित होते हैं। समसामयिकता भी आधुनिक युग का ही बोध है। आज

1- दे0 डा0 हरिश्चरण शर्मा- 'नयी कविता : नये धरातल - पृ0 29

2- विस्तृत अध्ययन के लिए पढ़िये- डा0 कुमार विमल 'अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य- पृ0 213-245

जीवन जिस तीव्रता से आगे की ओर बढ़ रहा है उसका अनुभव सामयिक बोध का ही एक पहलू है। इस तीव्र गतिशील जीवन में मानव प्रत्येक छोटे से छोटे क्षण की अनुभूति को आत्मसात् करने का प्रयास करता है। -----समसामयिकता इसी क्षणानुभूति को ग्रहण करने में सहायक सिद्ध होती है। वर्तमान के महत्व की अनुभूति समसामयिकता से ही सम्बंधित है।'[1] इस प्रकार दोनों ही भाव-बोध के एक विशिष्ट स्तर पर परस्पर एक दूसरे के पर्याय हैं। 'काल-दर्शन की दृष्टि से आधुनिकता एक प्रकार की तात्कालिता है या समसामयिकता।'[2] यहां यह स्मरणीय हो जाता है कि जिस प्रकार ब्रह्मा कीसृष्टि परिवर्तनशील होने के कारण सदैव एक अखण्ड सत्य और चिर सुंदर बनी रहती है, ठीक उसी प्रकार श्रेष्ठ साहित्यकार की कृति भी अपने समय की उपज होते हुए भी शाश्वत् व सनातन बनी रहती है। विश्व का अमर साहित्य अधिकांश रूप से अपने समय की अनुगूंजों एवं अनुप्रेरणाओं का परिणाम है। तथापि आधुनिक संदर्भों में उसका महत्व अक्षुण्ण बना रहा है। 'कोई वस्तु स्वतः न सामयिक होती है न सनातन, कृति ही प्रमाण है। ----- कोई विषय वस्तु केवल इसलिए सामयिक कहकर टाल दी जा सकती है कि उसकी प्रेरणा कृति को अपने समय से मिलती है और उसका तत्कालीन निवेदन अपने समय के प्रति है। -----श्रेष्ठ साहित्य वह है जो एक साथ हीसामयिक भी होता है और सनातन भी।'[3] इससे यह स्पष्ट किया जा सकता है कि किसी भी कृति के कि जिसमें प्रतिबिम्बित जीवन के द्वारा समय-सापेक्ष तात्कालिकता को तीव्रातितीव्र बोध को अपने चरम यथार्थ के साथ अभिव्यंजित किया गया हो, श्रेष्ठ कृति के मानदण्ड पर मूल्यांकित नहीं हो सकती। प्रत्युत यह देखना उचित होगा कि उस कृति के पीछे जो भाव-भूमि वा

1- डा0 हरिश्चरण शर्मा- 'नयीकविता : नये धरातल', पृ0 26

2- डा0 कुमार विमल' अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य- पृ0 207

3- अमृतराय- 'सहचिन्तन- लेख-शीर्षक, सामयिक और सनातन- पृ0 65

वैचारिक प्रक्रिया काम कर रही है क्या वह चिर शाश्वतता के निकष पर भी अपनी सफलता की घोषणा कर सकने में समर्थ है या नहीं ? अतएव आधुनिकता की भांति समसामयिकता भीसाहित्य व कला के क्षेत्र में कोई नई चीज नहीं है, अपितु दोनों का सम्बंध सदैव स्वस्थ और सप्राण रहनेवाली जीवन दृष्टि से जुड़ा हुआ होना अपेक्षित है ।

हिन्दी कविता : प्रेरणा और प्रभाव :

स्वाधीनता कालीन हिन्दी साहित्य प्रेरणा और प्रभाव की दृष्टि से वैज्ञानिक यांत्रिक विकास के अत्याधिक परिणाम स्वरूप जहां एक ओर जन-जीवन में परिवर्तित अनेक विध नवमूल्यों व नई दृष्टियों को आत्मसात् करते हुए आगे बढ़ा है, वहां ही वह अपने सामयिक पाश्चात्य-साहित्यिक रूपों, सिद्धान्तों एवं विभिन्न वादात्मक दर्शनों से भी एक बड़ी सीमा तक प्रभावित हुआ है । अतः वह अपनी पूर्ववर्ती साहित्यिक गतिविधियों से अपनी पृथकता का बोध कराता है । इस दृष्टि से भारतेन्दु से लेकर प्रसाद, प्रेमचंद तक के समय का साहित्य विगतकालीन साहित्य बन जाता है । अतएव विशुद्ध रूप से छायावादोत्तर काल से ही सामयिक आधुनिकता का आरंभ मानना अनुचित न होगा । स्वातंत्र्य पूर्व के दस वर्ष के काल को सम-सामयिक प्रवृत्तियों के बीज-बपन का काल कहा जा सकता है । प्रगतिवाद और प्रथम तार-सप्तक(1943) पर आधारित प्रयोगवादी रचनाएं उक्त कालान्तर्गत आ जाती है, जिसकी प्रकृतिगत विशेषताओं का विकास स्वतंत्रता पश्चात ही दृष्टि-गोचर होता है। अतः छायावादोत्तर हिन्दी साहित्य को विशेष रूप से सामयिक साहित्य(कि जिसके द्वारा निकटतम वा अत्याधुनिक जीवन सम्बंधी साहित्यिक प्रवृत्तियों का बोध होता है), की संज्ञा से अभिज्ञापित करने से उसे अतिव्याप्ति और अव्याप्ति जैसे दोषों से भी बचाया जा सकता है ।

वर्तमानकालीन परिस्थितियों को अनुभूत करते हुए यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि आज का युग विविध दृष्टियों से 'सांस्कृतिक-संकट' या 'मूल्यों की संक्रान्ति' का काल है। आज का व्यक्ति नित्य परिवर्तित नई अनुभूतियों, संवेदनाओं तथा चेतना में साँसे ले रहा है। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, धर्म, अर्थ, विज्ञान, भाषा आदि क्षेत्र में वैचारिक परिवर्तन की नई-नई दिशाएं उद्घाटित होती जा रही हैं। अतीतकालीन वा परम्परित जीवन मूल्यों में ह्रास व विघटनशीलता इसी का प्रतिफलन है। समस्त जीवन निराशा, हताशा, अस्तित्वहीनता जैसे मृत्युन्मुखी अनुभूतियों की आग में झुलसता जा रहा है। इस दृष्टि से सोचने पर सामयिक जीवन केअस्तित्व-बोध की रेखाएं अधिक स्पष्टता के साथ उभर आती हैं। सम-सामयिक साहित्य जहां वस्तु और शैल्पिक-गठन में अपने पूर्ववर्ती साहित्यिक-संस्कारों व परम्पराओं से स्वच्छंद होकर गतिशील हो रहा है, वहां वह परम्परा के स्वस्थ रूपों को भी पुन: उज्जीवित करता चला है। किन्तु उसकी प्रमुख विशेषता है, अपने समय की प्रमुखतम मांगों और मूल्यों का प्रतिनिधित्व करना। स्वतंत्रता के कुछ वर्ष पूर्व से ही अज्ञेय, इलाचंद जोशी एवं जैनेन्द्र आदि प्रभृति साहित्यकारों के द्वारा प्रथम बार स्वतंत्र और निर्व्याज रूप से हिन्दी साहित्य में 'व्यक्ति-बोध' की विभिन्न मनो-विश्लेषणपरक भाव-दशाओं का अति यथार्थवादी रूप आलेखित किया गया जिसके विकसित रूपों को स्वाधीनताकालीन साहित्य में भलीभांति देखा जा सकता है। इस प्रकार 'व्यक्ति' ही जीवन और साहित्य का प्रमुख केन्द्र बना जिसके परिपार्श्व में ईश्वर, धर्म, प्रकृति, नारी, समाज, राष्ट्र और विश्व-पर्यन्त के अनेक वैचारिक सूत्रों एवं संदर्भों को नये दृष्टिकोण से व्याख्यायित किया जाने लगा। यह अवश्य है कि व्यक्ति-स्वातंत्र्य के अत्यधिक आग्रह के कारण उसके अस्वस्थ, विकृत एवं अतिवैयक्तिक रूपों को भी साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया। साहित्य में ठोस यथार्थ-बोध के नये धरातलों एवं नये आयामों पर उक्त

विद्रूप महेस तथा अश्लील वस्तु अंकन की प्रवृति को दोष न मानकर सौंदर्य वा गुण ही माना जाने लगा। प्रगतिवादी साहित्य की अपेक्षा प्रयोगवादी साहित्य में विशेष रूप से तथाकथित वर्जित वस्तु चित्रण की प्रवृति को देखा जा सकता है। स्वातंत्र्योत्तर कालीन साहित्यकारों पर फ्रायड, युंग-एडलर जैसे पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों के विचारों व दर्शनों के प्रभाव के साथ हीसाथ आधुनिक नवकलावादों से सम्बंधित साहित्यिक-आंदोलनों का भी प्रभाव पड़ा है। साहित्य में व्यक्ति-प्रतिष्ठा जो 'लघुमानव' 'सस्ता-मानव' आदि के अनेक रूपों में प्रतिबिंबित होती रही है, बस उपर निर्दिष्ट प्रभावों का परिणाम है। किन्तु उक्त घोर व्यक्तिवादी भावना की प्रवृति भी अंतत: अपने अन्तर्मन की पीडा और व्यक्ति जीवन में के खोखलेपन से ऊबकर सामाजिकता के साथ सामंजस्य के लिए प्रयत्न करने लग गई। सम-सामयिक साहित्य के आलोक में उपर विवेचित तथ्यों को भलीभांतिपरीक्षित किया जा सकता है।

द्विवेदी युगीन काव्य-चेतना :

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही नव जागरण की चेतना द्वारा भारतीय संस्कृति, धर्म और सामाजिक पुनरुत्थान की प्रक्रिया विभिन्न आंदोलनों के रूप में मुखरित हो चुकी थी। द्विवेदीकाल(१९०० - १९१८ ई.) में उक्त चेतना को बालगंगाधर, तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, लाला लाजपतराय आदि जैसे क्रांतिकारी वीर नेता के द्वारा सक्रियता प्रदान हुई।

भारतेन्दु युग का काव्य मुख्यत: श्रृंगार, भक्ति और देश-प्रेम तथा समाज-सुधार के विषय को आधार बनाकर चला था। काव्य की भाषा ब्रजभाषा ही रही थी।पद-शैली का आधिक्य था यद्यपि विविध छंदों में रचनाएं हुई थीं। किन्तु सन् 1903 मेंआचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी 'सरस्वती' के सम्पादक बने। काव्य को

रीतिकालीन प्रवृत्तियों से अलग कर उसे लोकाभिमुख करके देखने की चेष्टा की गई। गद्य एवं पद्य के विकास का दूसरा चरण आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के साहित्यिक नेतृत्व से ही आरंभ होता है। उन्होंने उत्कृष्ट साहित्य की दृष्टि से गंभीर विचारों एवं भावों को व्यक्त करनेवाली भाषा की प्रौढ़ता, सुष्ठुता एवं सामर्थ्य पर विशेष बल दिया है। फलतः काव्य की भाषा ब्रजभाषा के क्षेत्र से बहिष्कृत होकर शुद्ध खड़ी बोली के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

काव्य का प्रयोजन केवल कला के लिए न होकर जीवन के लिए समर्थित होने लगा। जिसके फलस्वरूप काव्य आदर्श, नीति एवं उपदेशप्रधान हो गया। यही कारण है कि काव्य में कल्पना, भावुकता और सरसता के अभाव में नीरस, शुष्क और इतिवृत्तात्मक प्रधान शैली की विशेषता लिए दृष्टिगोचर होता है। आदर्श और नीति के माध्यम से जीवन को उज्ज्वल और उन्नत बनाने के लिए इतिहास, पुराण आदि से दिव्य चरित्रों को चुनकर उन्हें अपने काव्य का उपजीव्य बनाकर युगानुसार उनकी बौद्धिक एवं मानवतापरक नई व्याख्या की गई। उन सभी में असत् पर सत् की विजय दिखाई गई है। स्वार्थ त्याग, कर्तव्य-पालन, आत्म-गौरव आदि उच्चादर्शों की प्रेरणा दी गई। आदर्श स्वरूप इनका प्रधान लक्ष्य रहा। संक्षेप में उदात्त और ओज के नानाविध भावों की आदर्शपरक अभिव्यंजना ही इस युग के काव्य की प्रमुख विशेषता रही है। इसके द्वारा तथाकथित राष्ट्रीयता, मानवतावादी दृष्टिकोण, आदर्श और नीति परक भावों एवं विचारों को प्रमुख स्वर प्राप्त हुआ है। काव्य-रूप की दृष्टि से प्रस्तुत काल में महाकाव्य, खण्ड-काव्य, लघु पद्य कथा, मुक्तक प्रबंध आदि विविध काव्य-रूपों की सृष्टि हुई है। विविध छंदों का सफल प्रयोग भी इस काल में

1- सं० डा० नगेन्द्र- हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ० 497

हुआ है। इस प्रकार भाव, भाषा, छंद और काव्य-रूपों के स्वरूप-निर्धारण एवं उनके विकास के क्षेत्र में द्विवेदी युगीन काव्य अपना निजी महत्व रखता है।

छायावाद :

आचार्य द्विवेदी कालीन इतिवृतात्मक, नीति एवं उपयोगितावादी उपदेश प्रधान शैली की प्रतिक्रिया में छायावादी नव अभिव्यंजना प्रधान काव्य-शैली का जन्म हुआ। कवि-मनीषा सामाजिक धरातल से हटकर 'व्यक्ति-चिन्तन' में ही केन्द्रित हो गई। अपने व्यक्तिगत सुख-दुखों की अनुभूतियों को स्वप्निल एवं इन्द्रधनुषी कल्पनावाले इन युवा हृदय के भावुक कवियों ने वायवीय शैली द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान की। फलत: पूर्ववर्ती काव्य-रूढ़ियों एवं परम्परित विषयों व मान्यताओं का विरोध हुआ। काव्य का फलक आत्म केन्द्रित हो जाने के कारण व्यक्तिवादी चेतना पाश्चात्य कवियों की स्वच्छंदतावादी (रोमांटिक) अभिव्यक्ति का रूप धारण करने लगी। काव्य के व्यष्ठिनिष्ठ हो जाने के प्रभाव स्वरूप उसके भावपक्ष और कलापक्ष के दोनों ही क्षेत्रों में स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म के प्रति सर्वाधिक आग्रह इन कवियों में दृष्टिगत होता है। इनकी अन्तर्मुखी दृष्टि अतीन्द्रिय, अमांसल सौंदर्य एवं प्रेम को छूती है। यही सूक्ष्मतापरक काव्य दृष्टि 'परमाणु-पराग-शरीर' के रूप में साकार हुई है। अत: सूक्ष्म धरातल का वरण करने के कारण उक्त काव्य भी 'प्रसाद' के शब्दों में 'नित्य यौवन छबि से ही दीप्त। विश्व की करुणा-कामना मूर्ति।' बनकर जड़ प्रकृति में भी चेतना एवं प्राण फूंकने की विलक्षण शक्ति एवं आकर्षण में आबद्ध होकर रह गया। अपनी व्यक्तिपरक अन्तर्मुखी चेतना को बाह्य प्रकृति के विभिन्न रूपों में देखने का प्रयास ही इनकी रहस्यवादी चेतना की झिलमिल छाया का आभास करा देता है। महादेवी वर्मा के शब्दों में - "हृदय की भाव-भूमि पर उसने प्रकृति में बिखरी सौंदर्य -सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति की और दोनों के साथ स्वानुभूत सुख-दु:खों को मिलाकर एक ऐसी काव्य सृष्टि कर दी जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, छायावाद आदि अनेक नामों का भार संभाल सकी।"[1] प्रकृति के प्रति सर्वाधिक

1- महादेवी वर्मा का विवेचनात्मक गद्य- पृ0 60-61

आकर्षण का अन्य कारण यह भी है कि मनुष्य 'हृदय' और 'प्रकृति' के क्षेत्र से बाहर निकल कर 'यंत्र-लोक' में प्रवेश कर रहा था। ठीक ऐसे परिवेश में जहां एक ओर बाहरी संघर्ष के लिए जितनी सम्भावना रहती है उससे अधिक आन्तरिक संघर्षों की भी शक्यता अनुभूत होने लगती है। तत्कालीन बाह्य संघर्षों से संघातित व प्रताड़ित व्यक्ति स्वमेव ही बाहर अपने लिए कुछ न पाकर आत्मोन्मुख होता गया। उसके सहानुभूति पूर्ण आलम्बन के लिए तथा भौतिक सभ्यता से तिरस्कृत व आहत हृदय की कोमलतम भावनाओं को पुन: जीवित व प्रतिष्ठित करने के आग्रह वश 'प्रकृति' ही एक मात्र इनके लिए सम्बल बनी। अप्रत्यक्ष रूप से भौतिक (स्थूलता) पर सूक्ष्मता की विजय द्वारा 'मानव' की एक समान धरातल पर प्रतिष्ठा करना ही इन कवियों का प्रमुख उद्देश्य वा अभीष्ट बन गया। इतना ही नहीं अपितु इन कवियों ने प्रकृति में ही 'जीवन-सत्य' खोजने की चेष्टा की है। उक्त ढंग वैयक्तिक होते हुए भी रहस्यवादी चोला धारण कर सामने आया है। 'प्रसाद' जी के शब्दों में तथाकथित विचार की पुष्टि निम्न उद्धरित रूप से की जा सकती है। यथा-

"घूमने का मेरा अभ्यास,
बढ़ा था मुक्त व्योम-तल नित्य,
'कुतूहल' खोज रहा था व्यस्त,
हृदय-सत्ता का सुन्दर सत्य।।"[1]

अत: स्पष्ट है कि 'प्रकृति'-(स्व प्रकृति एवं बाह्य प्रकृति) के अंतर्लोक में एकनिष्ठ हो रम जाने के फलस्वरूप इन स्वप्निल कवियों द्वारा 'पुरुष'-(व्यक्ति एवं अज्ञात पुरुष) की द्विविध व्यंजना अत्यंत लाक्षणिक, सांकेतिक, प्रतीकात्मिक, बिम्बात्मक एवं चित्रोपम

1- दे0 'कामायनी', श्रद्धा-सर्ग।

भाषा शैली में की गई है। वैयक्तिक जगत के बाहरी संघर्षों का आलेखन न कर उसके आन्तरिक जगत् के संघर्षों में ही काव्य-सौंदर्य और जीवनानंद को खोजने का इनका प्रयास इन्हें अपनी पूर्ववर्ती बहिर्मुखी काव्य-धारा से अलग कर देता है।

प्रेम और सौंदर्य को इन कवियों की स्वस्थ एवं पावन दृष्टि ने अधिक मूल्यवान एवं शाश्वत रूप प्रदान किया है। नारी को भोग्या न मानकर सहचरी, प्रेमिका, माँ, भगिनी, सेविका, उपदेशिका, लोकाह्लादिनी , अमृत-शक्ति आदि के विविध उच्चादर्शों पर उसका यथोचित न्यायसंगत मूल्यांकन किया गया है। यहाँ यह स्मरणीय है कि इनके काव्य में प्रेम, सौन्दर्य, एवं करुणा की भावना व्यक्तिगत होते हुए भी वह समष्टिमूलक धरातल का संस्पर्श कर लेती है। यही कारण है कि अपने लिए 'आंसू' बहानेवाला कवि अंतत: समूचे विश्व के लिए 'आंसू' अर्थात् प्रेम और करुणा के अमृत-भावों की वर्षा करने लगता है। उसके पैमाने से जगत् के हर्ष-शोक की मदिरा छलकने लगती है। छायावादी किसी भी कवि की व्यक्तिगत चेतना-विवृति में 'भावुक' एवं 'संवेदनाशील' हृदय को ही नहीं वरन् कठोर और निर्मम हृदय के व्यक्ति को भी द्रवीभूत करने की शक्ति व गरिमा है। दया, करुणा, शोक, प्रेम, व्याकुलता, आदि जैसे कोमल भाव ही उसके काव्य को देश-काल की सीमा से परे कर उस 'सर्वात्मवाद' के शाश्वत धरातल पर आसीन कर देते हैं। हाँ, यह अवश्य है कि विशुद्ध रूप से इनका काव्य सामाजिक संवेदना अथवा लोक-चेतना का व्यापक फलक नहीं बन सका, किन्तु उससे सर्वथा 'लोक-हृदय' एवं 'लोकात्मा का बहिष्कार तो नहीं ही हो सका।[1]

1- 'छायावादी कवि की चेतना वैयक्तिक है, परन्तु इसका चिन्त्य विषय सामाजिक और मानवतावादी है।'
दे0 डा0 रमाशंकर शर्मा- 'छायावादोत्तर हिन्दी कविता -' पृ0 111

छायावादी काव्य वैयक्तिक स्वच्छंदता पर समादृत होने के फलस्वरूप प्रबंध की अपेक्षा सर्वाधिक रूप से मुक्तक एवं गीति काव्य जैसा काव्य-रूप ही उसके लिए अधिक उपयोगी एवं समुचित सिद्ध हुआ है। अनुभूति की तीव्रता जब अभिव्यक्त होने लगती है तब वह अधिक लयात्मक एवं संगीतात्मक रूप धारण कर लेती है। उक्त काव्य इसका स्वत: प्रमाण है।

ऊपर विवेचित तथ्यों के आधार पर छायावादी काव्य की निम्नलिखित विशेषताएं प्रमुख रूप से दृष्टिगत होती है। यथा- (1) व्यक्तिवादी दृष्टिकोण (2) स्वच्छंदतावादी प्रवृति(3) प्रकृति का मानवीकरण (4) प्रेम और सौंदर्य के स्वस्थ रूप का वर्णन(5) मानवतावादी अथवा समानतावादी स्वर की प्रधानता(6) भावों, विचारों, कल्पना एवं अभिव्यक्ति के सूक्ष्मीकरण की प्रवृति(7) लाक्षणिक पदावली। संक्षेप में तथाकथित विशेषताएं आधुनिक हिन्दी काव्य-जगत् को छायावाद की प्रमुख देन है।

प्रगतिवाद : (1936-1940) :

छायावादी काव्य की व्यक्ति-परक स्वच्छंद चेतना एवं अभिव्यंजना प्रधान सूक्ष्म भाषा शैली की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रगतिवाद का जन्म हुआ। काव्य व्यक्ति-जगत् की अन्तश्चेतना के सूक्ष्म धरातल से ऊपर उठकर लोक-चेतना के यथार्थपरक स्थूल धरातल पर अपनी प्रतिष्ठा की मांग करने लगा। "यह धारा युग चेतना की अभिव्यक्ति है। युग कांक्षा से जुड़ी होने के कारण यह नवीन धारा अधिक जीवन सम्पन्न है। इसने साहित्य के कथ्य, दृष्टिकोण, सौंदर्य-बोध और अभिव्यक्ति को सामाजिक जीवन से जोड़कर अधिक क्षमता-सम्पन्न तथा व्यापक बनाया।"[1]

1- सं0 डा0 हरवंशलाल शर्मा- हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास, चतुर्थ भाग-पृ0 9(

अतः इससे स्पष्ट है कि उत्तर वाद भी युगीन आवश्यकताओं का प्रतिफल है। अंग्रेजी साम्राज्यवादी और देशी पूंजीवादी सामाजिक अव्यवस्था एवं आर्थिक दुरवस्था ने जन-साधारण की प्रगति का मार्ग अवरुद्ध कर दिया था। राष्ट्र भी जन-शक्ति को बटोरकर स्वतंत्र एवं धर्म निरपेक्ष राष्ट्र के लिए संघर्षशील था। महात्मा गांधी जी ने मानवतावादी व आध्यात्मिक शक्ति से जन समूह व जनजाति की मुक्ति के लिए अहिंसक आंदोलनों का चक्र चलाया। जनता के मार्ग का नेतृत्व कर उन्होंने एक आदर्श राज्य की कल्पना की जिससे राष्ट्र की राजनैतिक दासता की पोषक शक्ति साम्राज्य-पूंजीवादी नीतियों का अंत हो सके।

इसकी प्रेरक पृष्ठभूमि पर 'मार्क्स' के 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' के सिद्धांतों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। उसके अनुसार मनुष्य के सारे क्रिया-कलाप (राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, पारिवारिक) आदि का आधार एक मात्र आर्थिक संरचना है। सामाजिक विषमता से जनित गरीबी, बेकारी, भूख, अशिक्षा, अप्रगति, असुविधादि इसी आर्थिक ढांचे के असंतुलन का परिणाम है। अतः तथाकथित सामाजिक संत्रास की घुटन को बिनष्ट करने के लिए रूढ़िग्रस्त पुरानी पूंजी-सामंतवादी व्यवस्था को नेस्तनाबूद करना ही उसका प्रमुख लक्ष्य है। वह साहित्य में भी इसी सिद्धांत का आग्रह रखता है। दूसरे शब्दों में 'वर्ग-संघर्ष' और 'वर्ग- चेतना' द्वारा सामाजिक वैषम्य कि जिसका मूलाधार पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था है को आमूल मिटाकर सर्वहारा वर्ग की प्रतिष्ठा करना ही कार्ल मार्क्स का मूलभूत सिद्धांत है। हिन्दी साहित्य पर उक्त विचारधारा का प्रभाव निम्नलिखित रूप से देखा जा सकता है। यथा-

(1) बुद्धिवादी दृष्टिकोण।

(2) प्राचीन व्यवस्था के अनुसार निर्मित धर्म और ईश्वर में अविश्वास, एवं उसके प्रति क्षोभ।

(3) सामाजिक विषमता की अनुभूति एवं उसके स्वरूप पर आक्रोश।

(4) किसानों और मजदूरों के प्रति सहानुभूति पूर्ण दृष्टिकोण और उनको चैतन्य करना।

(5) अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण और
(6) नये युग और नये मानव की कल्पना।[1]

उपर्युक्त समस्त जनोन्मुख राष्ट्रीय सामाजिक चेतना के फलस्वरूप सन् 1936 में लखनऊ में प्रेमचंद जी के सभापतित्व में 'प्रगतिशील हिन्दी लेखक संघ' की स्थापना हुई। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इससे पूर्व रूसी साम्यवादी क्रांति की भावना भी सारे विश्व में दौड़ गई थी। अतः प्रगतिशील साहित्य पर भी उसका प्रभाव सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक रूप से पड़ा है। इसने भारतीय जनवादी चेतना को आवेग और गति प्रदान की है। किन्तु यह स्मरणीय है कि प्रभाव भाव या चेतना से एक अलग वस्तु है जो किसी भाव की तीव्रतर अनुभूति या उसकी गतिशीलता को बढ़ाने के लिए उद्दीपन अथवा प्रेरणा का काम करता है। किसी भी सिद्धांत और विचारों के बनने के पीछे प्रायः उसके देश की विभिन्न परिस्थितियाँ ही सर्वप्रथम कारणभूत होती हैं। कभी-कभी ये परिस्थितियाँ विश्व के विविध भू-भागों में एक ही काल-खण्ड की एक समान उपज हुआ करती हैं। अतः कहा जा सकता है कि प्रगतिवाद विदेशी साम्यवाद का पर्याय नहीं है। "इसलिए जनवादी जागरण और विद्रोह की व्यापक भावना को मात्र साम्यवाद की देन और विदेशी आवृत्ति कहना निरर्थक है। साम्यवादी रंग तो इस पर बाद में चढ़ा और उसके बाद जनवादी चेतना अपने पूरे विकास की ओर अग्रसर हुई। प्रगतिवादी काव्य भारतीय समाज के तत्कालीन सामाजिक बोध की ही साहित्यिक अभिव्यक्ति है, इसमें मार्क्सवादी दर्शन का भी प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। परन्तु यह प्रभाव प्रगतिवादी काव्य की चेतना का मूल स्रोत नहीं है।"[2] यही कारण है कि हिन्दी के

1- दे0 डा0 भोलानाथ तिवारी- 'हिन्दी साहित्य' - पृ0 368

2- डा0 रमाकान्त शर्मा- 'छायावादी हिन्दी कविता' - पृ0 183

अधिकांश प्रगतिशील कवि सर्वहारा वर्ग की समस्याओं के प्रति अपनी सहानुभूति तो व्यक्त करते हैं, किन्तु 'रूस' या 'मार्क्स' के सिद्धान्तों का कोरा भक्त बनना उन्हें कदापि स्वीकार्य नहीं प्रतीत होता। 'प्रगतिशील साहित्य का सृजन करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि लेखक मार्क्सवादी ही हो। वह मानवतावादी भी हो सकता है।'[1]

प्रभाव की दृष्टि से प्रगतिवाद पर फ्रायड़ के सेक्सवाद, डारबिन के विकासवाद एवं युग के आत्म-विश्लेषण वाद का भी प्रभाव पड़ा है।

[illegible]

भाव- पक्ष :

विशेषता की दृष्टि से इसकी प्रमुखतम उपलब्धियों को निम्नांकित रूप से देखा जा सकता है।

(1) प्रगतिशील दर्शन की जीवन द्वारा अभिव्यक्ति। प्रगतिवादी कवि पंत ने साम्यवाद के प्रवर्तक कार्ल मार्क्स की स्तुति की है -

'धन्य मार्क्स चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय
शिखर पर।
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए
प्रलयंकर।"

(2) सामयिक सामाजिक समस्याओं का यथार्थांकन: इन कवियों ने सामाजिक विषमता व दुरवस्था के नग्न चित्रण के साथ तत्कालीन स्वाधीनता संग्राम साम्प्रदायिक दंगे, गांधी जी की हत्या, अकाल, मंहगाई, निर्धनता, बेकारी आदि का प्रभावोत्पादक वर्णन किया है।

1- डा० रांगेय राघव- 'प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड' - पृ० 14

(3) शोषक वर्ग के प्रति आक्रोश व क्रांति की भावना तथा शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति की भावना। इन कवियों ने सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए शोषित वर्ग की दयनीय स्थितियों का वर्णन कर उनमें बौद्धिक जागृति को उत्पन्न करने का प्रयास किया है, ठीक इसके विपरीत शोषक वर्ग के प्रति व्यंग्यात्मक रूप से कठोर प्रहारों की अनेकोन्मुखी वर्षा की है।

उदाहरणतया 'दिनकर' जी की एक पंक्ति लीजिए -
"श्वानों को मिलता वस्त्र-दूध, भूखे बालक अकुलाते हैं।
मां की हड्डी से चिपक-ठिठुर, जाड़ों की रात बिताते हैं।" अत: स्पष्ट है कि सर्वहारा वर्ग की प्रतिष्ठा ही इसका मुख्य लक्ष्य है।

(4) नारी चित्रण :

इन कवियों ने सर्वहारा वर्ग की नारी का नग्न चित्रण किया है। फ्रायड की काम-भावना से अभिभूत होकर इन्होंने प्रेम व श्रृंगार वर्णन में शारीरिकता व वासना की गंध को भी काव्य द्वारा अभिव्यक्ति दी है। फलत: इनका तथोक्त चित्रण 'रीतिकालीन नायिकाओं का आधुनिक संस्करण' बन गया है।

कला पक्ष :

प्रगतिवादी कवियों के लिए 'कला-कला के लिए महत्वपूर्ण न होकर कला जीवन के लिए मूल्यांकित होने के कारण काव्य उपयोगिता प्रधान धरातल पर प्रतिष्ठित होकर जब साधारण के भावों, विचारों एवं संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का सशक्त व सरल ~~सरल~~ माध्यम बना।" प्रगतिशील लेखक की भावना सामाजिक भावना है व्यक्तिगत नहीं। वह सौंदर्य को अपने हृदय या दूसरे को आंखों में देखता है। --- वह अपने काव्य चित्रों का आधार नित्य प्रति के व्यवहार को बनाता है। उसकी ~~xxxx~~ अलंकरण सामग्री सूक्ष्म, कोमल या चुनी हुई नहीं है। वह स्थूल और प्राकृत है। अतएव प्रगतिवादी अभिव्यक्ति खरी, खड़ी और तीखी होती है, क्योंकि वह मुख्यत: भावात्मक न होकर

आलोचनात्मक है। प्रगतिवाद जीवन के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का नाम है।"[1] यही कारण है कि प्रगतिवादी काव्य जनसाधारण का काव्य होने के परिणाम स्वरूप प्राय: मुक्तक काव्य के रूप में ही लिखा गया है। छंद भी लोकगीतों की विविध धुनों पर आधारित तथा बंधन रहित हैं। अलंकारों के आकर्षण के प्रति का मोह नहीं है।

'ये अलंकार बहु भार मोह के बंधन हैं,
दे तोड़ इन्हें।' ('स्वर मेरे' - नरेन्द्र शर्मा)

प्रगतिवादी काव्य की भाषा भी सरल, सुबोध्य एवं व्यावहारिक है। छायावाद की लाक्षणिक व क्लिष्ट भाषा-शैली का उसमें सर्वथा अभाव है। उसके प्रतीक, बिम्ब शब्द, मुहावरे आदि सभी लोक जीवन के बीच के हैं। रामविलास शर्मा, नागार्जुन, मुक्तिबोध, केदारनाथ अग्रवाल आदि इस धारा के उच्च कोटि के कवि हैं।

पतन :

इसके कुछ ही वर्ष पश्चात् इसमें प्रचारात्मक उत्तेजना और आवेग की तीव्रता उग्र स्वर पकड़ती चली गई। साथ ही जनजीवन की प्रत्यक्ष मूलक अनुभूति के अभाव के कारण उसके भाव और विचार पक्षों में नैसर्गिकता न आ सकी।[2] इस प्रकार साधना शून्य कविता रागात्मक और विचारात्मक तत्वों के बीच संतुलन स्थापित न कर सकी। उसमें केवल एक ही वर्ग(सर्वहारा) की हित-साधना का भाव सन्निहित होने से अन्य वर्ग उपेक्षित ही रहे। इसी प्रकार उसमें जीवन सम्बंधित भौतिक विचारों एवं भोगवादी दृष्टि की प्रधानता होने के कारण भारतीय आध्यात्मिकता एवं नैतिक विचारधारा भी उससे तिरस्कृत रही। इसके अभाव के फलस्वरूप यथार्थपरक दृष्टिकोण की प्रधानता

1- दे0 डा0 नगेन्द्र 'आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ- पृ0 101-102

2- "उसने नए कथ्य को कच्चे माल के रूप में लिया और उसी रूप में रख दिया। उस कथ्य को कवि अपने अनुभव और संस्कार की आँच में गला नहीं सके और न तो उसे कलात्मक अभिव्यक्ति ही दे सके।"
दे0 सं0 डा0 हरवंशलाल शर्मा- 'हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास, चतुर्दश भाग- पृ0 90

~~(होने के कारण भारतीय आध्यात्मिकता एवं नैतिक विश्लेषण से उसे तिरस्कृत रही । इसके अभाव के फलस्वरूप यथार्थपरक दृष्टिकोण की प्रधानता)~~ के कारण उसमें वर्जित एवं घृणित नग्न और अश्लील रूप चित्रण की प्रवृत्ति भी उभरती गई ।

प्रयोगवाद : (सन् 1943 से ...) प्रेरक पृष्ठभूमि एवं नामकरण :

वस्तुत: व्यक्तिगत जीवन की रागमूलक संवेदनाओं को लेकर छायावादी काव्य चेतना का स्वर प्रमुख रूप से मुखरित हुआ था । इसी युग में प्राचीन एवं परंपरित मान्यताएं टूटने लगी थीं । किन्तु छायावादी व्यक्तिपरक चेतना द्वितीय महायुद्ध से उत्पन्न आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि निराशामूलक जीवन स्थितियों के प्रकाशन के लिए सर्वथा उपयुक्त सिद्ध न हो सकी । "इसी आवश्यकता के दबाव ने छायावादी सूक्ष्म वायवी भाव-वस्तु तथा उसी के अनुरूप शैली आदि के प्रति कवियों में एक प्रकार का विद्रोह जाग्रत किया । प्रयोगशील कविता इसी विद्रोह का परिणाम है ।"[1] समस्त संसार को भयाक्रान्त एवं जीवन के प्रति मानव को आस्थाहीन कर देनेवाली महायुद्धों की प्रचण्ड विभीषिकाओं, अंग्रेजी प्रशासन की अमानुषिक नीतियों, सतत प्रवर्तमान भयंकर दुर्भिक्षों-अकालों, साम्प्रदायिक दंगे-फसादों एवं वैज्ञानिक सभ्यता से विकसित औद्योगिक तथा नागरीकरण की समस्याओं आदि ने मानव जीवन में अनेकश: विघटनमूलक नई सम्भावनाओं को जन्म दे दिया था । इसके प्रभाव स्वरूप जन-जीवन में नये मूल्यों के संक्रमण की स्थितियां बलवती होती गई । युगीन संघातों से संघर्षित मानव ने स्वयं को चारों ओर से उभरती हुई निराशा, अवसाद, कुंठा, अनास्था व अनिश्चितता आदि जैसे भावों और नये बोधों के ह्रासोन्मुखी परिवेश में देखा । वह संपूर्ण रूप से बाहरी वातावरण से अपने जीवन की स्थिरता व अस्तित्व-विकास के लिए ठोस धरातल

1- डॉ० श्रीरामनागर 'हिन्दी प्रयोगशील कविता और उसके प्रेरणा स्रोत'-पृ० ङ,ण

प्राप्त न कर पुन: व्यक्तिगत सीमा के द्वार पर आ खड़ा हुआ। वह अपनी आत्मगुहा में ही युगीन संघातक संवेदनाओं से दीप्त चिन्तन के मणियों को ढूंढने लगा। फलत: स्व-पीडाओं के भोगे हुए नये क्षणों को अपनी प्रामाणिकता, सच्चाई और ईमानदारी के साथ तदनुरूप अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए मध्यवर्गीय संवेदना व संत्रास से ग्रस्त कवि-हृदय एक जागरूक आलोचक की भांति बौद्धिक दृष्टिकोण से काव्य-शिल्प और शैली के क्षेत्र में नये नये प्रयोगों का अन्वेषक बनता गया। आधुनिक हिन्दी काव्य में तथाकथित अभिनव प्रयोगों की प्रवृति विशेष को ही कतिपय आलोचकों द्वारा प्रयोगवाद की संज्ञा से अभिहित किया गया। इसके उपरान्त प्रवर्तमान प्रगतिवादी काव्य युगीन संघातों से पीड़ित तत्कालीन मृत्यु : प्राय: जनता के हृदय को स्पर्श करने में सर्वथा वंचित ही रहा। उसकी दृष्टि मार्क्सवादी ऐतिहासिक यथार्थपरक सिद्धांतों की तुला पर केन्द्रित रहने के कारण सामान्य जन-जीवन के सर्वांगीण विकास को अपना लक्ष्य न बना सकी। अत: डॉ० रमाशंकर शर्मा जी के शब्दों में, कहा जा सकता है कि - "प्रयोगवाद का प्रारंभ प्रगतिवाद की प्रचारात्मक अभिधात्मक विचारधाराओं और राजनीति ग्रस्त साहित्यिक प्रक्रिया के विरोध में हुआ।"[1] प्रगतिवाद में साम्यवादी राजनैतिक विचारधारा व्यक्ति को समाज की एक स्वतंत्र इकाई के रूप में स्वीकृति नहीं देती, किन्तु इसके विपरीत आधुनिक व्यक्ति-स्वातंत्र्य नवीन आत्म-बोध अथवा आत्म-संकट की अनुभूति को स्वतंत्र रूप से अपने परिवेश की समग्रता में देखने-सोचने का आग्रह रखता है। 'शेखर एक जीवनी' में शेखर का 'व्यक्ति विशेष स्वतंत्र व्यक्तित्व रखते हुए भी वह ओढ़ा हुआ सत्य नहीं है, प्रत्युत उसके द्वारा व्यक्ति, समाज, एवं राष्ट्र की नवीन सम्भावनाओं को स्वयं में समेटकर चलने का अभिनव आग्रह भी है। प्रयोगवादी कविता तथाकथित व्यक्ति-स्वातंत्र्य की भावनाओं का सुंदर प्रमाण है। 'वर्तमान युग के प्रारम्भ तथा विकास

1- दे० डा० रमाशंकर शर्मा- 'छायावादोत्तर हिन्दी कविता' - पृ० 287

में कवि का व्यक्तिवादी दृष्टिकोण प्रधान है। युग-युग से भारतीय कवि पर व्यक्तिगत संवेदनाओं को व्यक्त करने के क्षेत्र में प्रतिबंध रहा है। समाजीकृत तथा साधारणीकृत की शर्तें उसके सामने रही थीं। आधुनिक युग के पूर्वार्द्ध में ही ये बंधन ढीले पड़ने लगे थे, सीमाएं मिटने लगी थीं। परवर्तमान युग के कवि ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता का मुक्त उद्घोष किया।"[1]

इसकी प्रेरक एवं सहायक पृष्ठभूमि के रूप में यूरोपीय व्यक्तिवादी दर्शनों व सिद्धान्तों का भी गहरा हाथ रहा है। प्रयोगवादी साहित्यकार अंग्रेजी के टी०एस० इलियट, एजरा पाउण्ड, वर्जीनिया वुल्फ, जेम्स ज्वायर्स आदि जैसे समकालीन कवियों, आलोचकों एवं कथाकारों की नई काव्य शैलियों तथा विचारधाराओं से प्रभावित हुए हैं। विषय और शिल्प की दृष्टि से मार्क्सवाद, मनोविश्लेषणवाद, अस्तित्ववाद तथा प्रतीकवाद, बिम्बवाद, प्रभाववाद आदि जैसे आधुनिक पाश्चात्य काव्य संप्रदायों एवं दार्शनिक सिद्धांतों ने साहित्य के क्षेत्र में नये नये प्रयोगों के शत: द्वार खोल दिये थे। बौद्धिक चेतना सम्पन्न भारतीय साहित्यिक मनीषा इससे प्रभावित हुए बिना न रह सकी। प्रयोगवादी कविता इसी यूरोपीय साहित्यिक आंदोलन का प्रतिफलन है। वैसे तो इसके पूर्व भी हिन्दी साहित्य में प्रयोगशीलता के दर्शन होते हैं परन्तु सामूहिक रूप से साहित्य प्रयोगलक्षी प्रवृति का श्रीगणेश सन् 1943 में 'अज्ञेय' के सम्पादन में 'तार सप्तक' (प्रथम भाग) के प्रकाशन से ही होता है। इसके पश्चात् सन् 1951 और सन् 1959 में भी सात-सात नये कवियों की रचनाओं का क्रमश: 'सप्तक' का दूसरा और तीसरा भाग प्रकाशित किया गया। प्रतीक, पाटल, नई कविता, नई धारा, दृष्टिकोण, कल्पना, अजन्ता जैसी विविध पत्र-पत्रिकाओं द्वारा भी प्रयोगधर्मी रचनाएं प्रकाशित होती रहीं। स्वतंत्ररूप से प्रयोगवादी कविता

1- दे० डा० रघुवंश : 'हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियां' - भूमिका- पृ० 1

संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं जिनमें अज्ञेय कृत 'हरी घास पर क्षण भर', 'अरी', 'आँगन के द्वार पार', 'इन्द्रधनुष: रौंदे हुए', भवानीप्रसाद मिश्र कृत, 'गीत फरोश', गिरिजाकुमार माथुर कृत 'शिला पंख चमकीले', 'नाश और निर्माण', भारत भूषण अग्रवाल कृत 'मुक्ति मार्ग', 'छवि के बंधन', शकुंतला माथुर कृत 'सुहाग-बेला', 'कूड़े से भरी गाड़ियाँ' और डा0 धर्मवीर भारती कृत 'सात गीत वर्ष', 'ठण्डा लोहा', 'कनुप्रिया', 'अंधायुग' आदि रचनाएं उल्लेखनीय हैं।

प्रयोगवाद मूलत: हिन्दी काव्य धारा में एक नये ऐतिहासिक मोड़ का बोधक है। प्रारंभ में प्रयोगवाद के 'वाद' शब्द को लेकर अनेक धारणाएं उसके पक्ष एवं विपक्ष में चर्चा का मुख्य विषय बनी हुई थी। 'वाद' शब्द का विरोध करते हुए स्वयं 'अज्ञेय' जी ने कहा है कि - 'प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं। न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य है। ---- अत: हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना हमें 'कवितावादी' कहना"[1] अन्यत्र 'प्रयोगवाद' नाम के नये मतवाद के प्रवर्तन का दायित्व क्योंकि अनचाहे और अकारण ही हमारे मत्थे मढ़ दिया गया है।'[2] अत: इससे स्पष्ट है कि 'अज्ञेय' जी ने प्रयोग-धर्मिता को आत्म सत्य का अन्वेषण करने के निमित्त साधन के रूप में ही स्वीकृति दी है। श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा जी ने भी इसमें प्रयुक्त 'वाद' शब्द के विपक्ष में अपना मत प्रकट करते हुए कहा है कि - 'असलियत में 'प्रयोगवाद' शब्द ही गलत है क्योंकि एक किसी भी सचमुच के वाद के पीछे एक समूचा दर्शन होता है। दूसरे प्रयोग समाजोन्मुख और आत्मपरक दोनों ही पक्षों में किये जा सकते हैं। इसलिए एक ही प्रकार के प्रयोगों को प्रयोग मानकर उन्हें 'प्रयोगवाद' कहना फिजूल की बात है।"[3] श्री रामकुमार

1- दे0 'दूसरा तार सप्तक(भूमिका) पृ0 6

2- दे0 वही- भूमिका- पृ0 6

3- दे0 गिरिजाकुमार माथुर 'आलोचना-जुलाई-1954।

खण्डेलवाल जी ने इन कवियों का प्रधान लक्ष्य काव्य विषयक प्रयोग होने के कारण इन्हें 'प्रयोगवादी' कहा है।[1] स्वयं 'नकेन'- सम्प्रदाय के कवि अपने को प्रयोगवादी मानकर चले हैं। इनके लिए प्रयोग साध्य है, साधन नहीं। कतिपय विद्वानों ने 'प्रयोगवाद' नाम पर आपत्ति उठाते हुए उसे 'नई कविता' कहना उचित समझा है, जिसका विचार हम आगे नई कविता के सन्दर्भ में करेंगे।

इस प्रकार उक्त कोटि की काव्य-धारा विद्वानों में बहु चर्चा का विषय रही है, तथापि आज इसे प्रयोग-बहुलता के आधार पर एक कविता विशेष के रूप में 'प्रयोगवाद' के अन्तर्गत रखा गया है। 'प्रयोगवाद' भी कविता विशेष है, इसलिए समाज ने केवल आज की विशेष कविता को यह नाम दिया है।"[2] तत्वतः 'प्रयोग' साहित्य के क्षेत्र में कदापि सीमित एवं पूर्णता का ज्ञापक नहीं हो सकता, वरन् उससे नये सौन्दर्य के विविध आयामों के अन्वेषण की सतत प्रक्रिया का बोध होता है। जयशंकर प्रसाद जी के शब्दों में कहना चाहें तो यह कहा जा सकता है कि 'प्रयोग' "हमें चलना उस मंजिल तक जिसके आगे राह नहीं।" की दिशावलोकन का संकेत कराता है। अन्वेषण की प्रक्रिया या राह कदापि समाप्त नहीं हो सकती। विज्ञान और साहित्य में भी प्रयोग से यही आशय ग्रहीत किया जा सकता है। "आज तक संसार के साहित्य में जो भी मोड़ आए हैं और भविष्य में जो भी मोड़ आएंगे, वे सब के सब प्रयोग हैं। और प्रयोग कहलाएंगे। साहित्य शास्त्र और सिद्धान्त के रूप में आलोचना के प्रयोग भी त्रिकालवर्ती रहेंगे।"[3]

1- दे० श्री रामकुमार खण्डेलवाल 'हिन्दी काव्य और प्रयोगवाद'- पृ० 3

2- डा० नामवर सिंह- प्रयोगवाद- पृ० 80-81

3- दे० शंकरदेव अवतरे- 'हिन्दी साहित्य के काव्य रूप'- पृ० 11

प्रवृत्तिगत विशेषताएं (भाव-पक्ष) (1) घोर वैयक्तिकता का आग्रह :

प्रयोगवादी काव्य में समष्टिगत भावना के स्थान पर व्यक्तिगत अनुभूतियों के चित्रण का अत्याग्रह दृष्टिगत होता है। इसका कवि अपने जीवन में भुगते हुए क्षणों की आस्था-अनास्था, कुंठा, हताशा, अनिश्चितता, एकाकीपन, बिखराव, भटकाव, घुटन, टूटन, अस्तित्वहीनता आदि जैसी अनुभूतियों एवं संवेदनाओं के नये भाव-बोधों को घोर वैयक्तिक धरातल पर मनोविश्लेषणात्मक रूप से यथार्थपरक अभिव्यक्ति प्रदान करने में ही अपने कवि-कर्म की सार्थकता समझता है। 'अहं' की स्वीकृति उसका प्रमुख लक्ष्य है। जहां छायावादी कवि व्यक्तिगत अनुभूतियों को प्रकृति की आड़ में क्लिष्ट कल्पना-शैली के द्वारा छिपाने का प्रयत्न करता है, वहां इसके विपरीत प्रयोगवादी कवि स्वयं द्वारा अनुभूत उन आत्मबोधों को बिना किसी हिचकिचाहट के समाज के आगे नग्न रूप में, रख देना ही उचित समझता है। अतएव, इसमें व्यक्तिवादी जीवन दर्शन के अंकन की प्रवृत्ति विशेष रूप से उभर आई है। इसका कवि मध्यवर्गीय जीवनकी कुंठाओं से जुड़ा हुआ होने के कारण सामाजिक परिवेश के संघातों से उत्पन्न व्यक्ति-मन की द्विधा व संशयग्रस्त अनेक विध स्थितियों को, उसकी लघु और हीनताग्रस्त ग्रंथियों को सम्प्रेषणात्मक अभिव्यक्ति दे रहा है। इस दृष्टि से इसमें अति-वैयक्तिकता की प्रवृत्ति प्रमुख हो गई है। उदाहरणार्थ - " एक साधारण नगर के

एक साधारण घर में
मेरा जन्म हुआ
बचपन बीता अति साधारण
साधारण खान पान
तब मैं एकाग्र मन
जुट गया ग्रंथों में
मुझे परीक्षाओं में विलक्षण श्रेय मिला।"

- भारत भूषण

इस प्रकार इन कवियों ने नितांत व्यक्तिपरक अनुभूतियों के आदर्श पर व्यक्ति-यथार्थ की मनोविश्लेषण परक नई व्याख्या प्रस्तुत की है। अहं का विस्फोट ही इनके काव्य का मूलभूत तत्व है अपनी व्यक्तिगत उपलब्धियों को काव्य द्वारा आत्मसात् करते हुए समाज को भी उनसे प्रभावित करना ही इन कवियों का प्रमुख उद्देश्य दृष्टिगत होता है। इसके लिए उन्हें परम्परित मान्यताओं और लीकों को तोड़ना भी पड़ा है। "परम्परा का कवि के लिए कोई अर्थ नहीं है। जब तक वह उसे ठीक बजाकर तोड़-मरोड़कर आत्म-सात् नहीं कर लेता।"[1] अत: इससे यह स्पष्ट है कि इनका काव्य व्यक्तिगत जीवन की सामयिक समस्याओं एवं प्रश्नों का प्रतिनिधित्व करने के कारण, लोक-सम्पृक्ति के व्यापक धरातल से कट कर, हटकर अतिवैयक्तिकता की सीमा को छूने लगता है। काव्य में क्षणवाद, अस्तित्ववाद, अति-अस्तित्ववाद, लघुमानववाद तथाकथित घोर वैयक्तिकता की प्रवृत्ति का ही परिणाम है। कतिपय प्रयोगवादी कवियों ने व्यक्ति-संघर्ष की बाह्य यथार्थ से पलायन करनेवाली आत्मोन्मुखी व्याख्या को काव्य के लिए पर्याप्त नहीं समझा है। केवल वे प्रयोग मात्र के लिए प्रयोग नहीं करते अपितु उसे सामाजिक संदर्भों से जोड़कर अपनी लोकाभिमुखता का परिचय देना भी वांछित समझते हैं। उदाहरणस्वरूप गिरिजाकुमार माथुर और धर्मवीर भारती जी की निम्नस्थ उक्तियां ध्यातव्य हैं -

(1) "वस्तु और रूप विधान दोनों के सम्बंध मेंनए प्रयोग करते समय हमें ध्यान रखना होगा कि वह प्रयोग व्यक्ति जीवन के जिस प्रश्न को सीमित रूप से लेकर आगे बढ़ रहा है वह एक बड़े रूप में सारी दुनियां पर घटित किया जा सकता है अथवा नहीं।"[1]

-(गिरिजाकुमार माथुर)

1- दे0 अवन्तिका, जनवरी 1954, पृ0 250

(2) " मैं अपना पथ बना रहा हूं, जिन्दगी से अलग रहकर नहीं, जिन्दगी के संघर्षों को झेलता हुआ, उसके दुख-दर्द में एक गम्भीर अर्थ ढूंढता हुआ, और उस अर्थ के सहारे अपने को जन-व्यापी सच्चाई के प्रति अर्पित करने का प्रयास करते हुए ।"[1]

(धर्मवीर भारती)

(2) अति नग्न यथार्थवादी दृष्टिकोण :

प्रयोगवादी कवियों ने अपने पूर्व के कवियों द्वारा त्याज्य विषय-वस्तुओं के यथार्थपरक चित्रांकन की प्रवृत्ति को अपने काव्य का मूलाधार घोषित किया है। 'अज्ञेय' के शब्दों में- 'जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं, उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी नहीं छुआ गया था जिनको अभेद्य मान लिया है।"[2] इस प्रकार इन कवियों का लक्ष्य हेय और निष्कृष्ट समझी जानेवाली हीन कोटि की भावनाओं को बड़ी साहसिकता के साथ रूपांकित करना भी रहा है। मध्यवर्गीय जीवन की ह्रासोन्मुख संवेदनाओं एवं अनुभूतियों का यथार्थपरक चित्रण इसका प्रमाण है। उदाहरणार्थ 'तार सप्तक' की कुछ कविताएं ली जा सकती हैं यथा- 'चूड़ी का टुकड़ा, 'रुक कर जाती हुई रात', 'मैं और खाली चा की प्याली'। इसी प्रकार 'फटी पुरानी ओढ़नी', 'बाथरूम, दाल-तेल, नोन, लकड़ी', बांस की टूटी हुई टट्टी आदि जैसी कविताओं में व्यक्ति-अहं के ठोस धरातल पर उपेक्षित वस्तुओं का सौन्दर्यांकन किया गया है। प्रयोगवादी काव्य में दमित वासनाओं, व्यक्तिगत कुंठाओं, नग्न एवं अश्लील मनोवृत्तियों का चित्रण उक्त अति यथार्थवादी दृष्टिकोण के आग्रह एवं आकर्षण का ही परिचायक है। शकुन्तला माथुर ने 'सुहाग वेला' कविता में सुहागिन के चित्रण के माध्यम से अपनी कामेच्छा का नग्न चित्रण किया है -

---

1- दे0 'ठण्डा लोहा तथा अन्य कविताएं- भूमिका, पृ0 8

2- सं0 अज्ञेय- तार सप्तक- भूमिका-पृ0-75

"चली आयी बेला सुहागिन पायल पहने---
बाण विद्ध हरिणी सी
बाँहों में सिमट जाने की
उलझने की, लिपट जाने की,
मोती की लड़ी समान ------।"

तथा-

"प्यार है अभिशप्त- तुम कहाँ हो नारी ?"

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि इन कवियों ने यौन-वर्जनाओं का बड़ी रुचि के साथ खुलकर वर्णन किया है। इससे इन पर फ्रायड के 'काम-सिद्धांत' का प्रभाव स्पष्टतया दृष्टिगत हो जाता है। इस सम्बंध में तारसप्तक की भूमिका में अज्ञेय जी ने कहा है - "आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति सेक्स सम्बंधी वर्जनाओं से आक्रान्त है। उसका मस्तिष्क दमन की गई सेक्स की भावनाओं से भरा है।"[1] प्रयोगवादी अज्ञेय, शमशेरसिंह बहादुर, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती आदि प्रभृति कवियों ने ऊपर उद्धरित युगीन यथार्थ की अभिव्यक्ति के रूप में अपनी काम-वासनाओं को कहीं अति ~~ववव~~ नग्न व अनावृत रूप में, तो कहीं बिम्ब व प्रतीकात्मक रूप में, रूपायित करने की चेष्टा की है।

(2) अति बौद्धिक दृष्टिकोण का आग्रह :

प्रयोगवादी कवियों ने बीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक संघातों से उत्पन्न मध्य वर्ग की कुंठा, हताशा, निराशा, अस्तित्वहीनता आदि नवीन भावों एवं बोधों की बौद्धिक दृष्टिकोण से व्याख्या प्रस्तुत की है। अतएव ये कवि वैज्ञानिक बुद्धिवाद से पूर्णतया प्रभावित हैं। वस्तुतः काव्य में नवीन प्रयोगों का प्रयोग बौद्धिक दृष्टिकोण

1- तार सप्तक भूमिका- [illegible]

का ही परिणाम है। आज के विघटनमूलक परिवेश में विश्वास और श्रद्धा की शीला चरमरा गई है। आज का कवि इसी वास्तविक सत्य को कल्पना के आदर्श से हटकर देखने का प्रयास करता है। कल्पना और भावुकता के स्थान पर यथार्थ वस्तुअंकन की प्रवृत्ति इसी बौद्धिक दृष्टि की द्योतक है। यही कारण है कि प्रयोगवादी कवियों ने काव्य में रसोद्रेक की अपेक्षा बौद्धिक रस की परिकल्पना की है। बौद्धिक चमत्कार ही उनके काव्य का उपजीव्य है। डा० धर्मवीर भारती जी ने तथाकथित बौद्धिकता का समर्थन किया है - यथा- "प्रयोगवादी कविता में भावना है, किन्तु हर भावना के सामने एक प्रश्न चिन्ह लगा हुआ है। इस प्रश्न चिन्ह को आप बौद्धिक कह सकते हैं।" अतः स्पष्ट है कि इन कवियों ने बौद्धिक चमत्कारपूर्ण प्रभाव को ही रस रूप में ग्रहण किया है। यही कारण है कि इस कोटि की कविता में वर्णित रस के अंगों का अभाव दृष्टिगत होता है। भाव या रस का पूर्ण परिपाक नहीं हो पाया है। किन्तु यह अवश्य है कि उसके कथ्य में प्रभाव और चमत्कार उत्पन्न करनेवाली शक्ति निहित है। कहीं-कहीं बौद्धिक तत्वों की अत्यधिक प्रबलता के कारण काव्य में अस्पष्टता, दुरुहता एवं क्लिष्टता की भरमार हो गई है, जिसके फलस्वरूप निश्चित अर्थ को समझने के लिए बौद्धिक व्यायाम करना पड़ता है। डा० नगेन्द्र जी ने इस प्रकार की अस्पष्टता के कारणों पर निम्नलिखित रूप से विचार किया है। -यथा-

(1) भाव तत्व और काव्यानुभूति के बीच रागात्मक के बजाय बुद्धिगत सम्बंध।

(2) साधारणीकरण का त्याग।

(3) उपचेतन मन के अनुभव खण्डों के यथावत चित्रण का आग्रह।

(4) काव्य के उपकरणों एवं भाषा का एकान्त वैयक्तिक और अनर्गल प्रयोग।

---

(5) इन सबका मूलभूत कारण- नूतनता का सर्वग्राही मोह, जो सदा परिचित को छोड़ कर अपरिचित की खोज में रहता है ।[1]

ऊपर विवेचित अति बौद्धिकता के दुराग्रह के कारण प्रयोगवादी कविता बुद्धि-जीवी वर्ग के उपभोग की वस्तु बनकर रह गई है । उसकी अभिव्यक्ति की बोझिलता के कारण उसकी मार्मिक अनुभूति भी मर्मस्पर्शी नहीं बन पाई है । उदाहरण के लिए अज्ञेय की 'बाह मेरे रुके रहे' तथा डा० भारती 'घाटी का बादल' ऐसी ही कविताएं हैं । कवियों का अधिकांश काव्य कवि-हृदय की सरसता, रागात्मकता के संस्पर्श के अभाव में अभावात्मक व नीरस बन गया है । बौद्धिक व वैचारिक तत्वों की प्रधानता के कारण श्रृंगारपरक रचनाएं भी अधिक संवेदनीय नहीं हो पाई हैं । काव्य में गद्यात्मकता और आलोचनात्मक दृष्टि इसी बौद्धिक व वैज्ञानिक चेतना का सुंदर उदाहरण है ।

<u>कलापक्ष :</u>

प्रयोगवादी कवियों की दृष्टि मूलत: अन्वेषणपरक है । अत: इन कवियों ने अपने कलापक्ष में भी अनेक विध नव शैल्पिक प्रयोग किये हैं । वस्तुत: इन कवियों ने वर्ण्य-विषय से अधिक नवीन शैली शिल्प सम्बंधी काव्य की भाषा, अलंकार, छंद, बिम्बों, प्रतीकों एवं उपमानों आदि पर विशेष ध्यान दिया है । इन सभी में प्रयोगात्मक दृष्टि का आग्रह है । इस सम्बंध में गिरिजाकुमार माथुर का मत ध्यातव्य है - "कविता में विषय से अधिक टेकनीक पर ध्यान दिया गया है । विषय की मौलिकता का पक्षपाती होते हुए भी मेरा विश्वास है कि टेकनीक के अभाव में कविता अधूरी रह जाती है ।[2] धर्मवीर भारती जी ने भावतत्व और कलापक्ष दोनों का समन्वय किसी भी काव्य की

1- दे० डा० नगेन्द्र- 'विचार और विवेचन'- पृ० 147

2- गिरिजाकुमार माथुर 'तार सप्तक', पृ० 40

श्रेष्ठता को प्रतिपादित करने के लिए आवश्यक माना है। यथा- "एक सफल कलाकार को कला की बाह्य अभिव्यक्ति को उतनी ही सूक्ष्मता से ग्रहण करना पड़ता है जितनी सूक्ष्मता से वह अपनी अनुभूति को ग्रहण करता है।"[1] 'अज्ञेय' के मतानुसार काव्य में 'रूपाकार' वा 'फार्म' का उतना अधिक महत्व नहीं जितना कि सार या अर्थ का महत्व रहता है। रूप-विधान की प्रतिष्ठा उनके लिए व्यर्थ व निरर्थक प्रतीत होती है - "अर्थ दो अर्थ दो

मत हमें रूपाकार इतने व्यर्थ दो।
हम समझते हैं इशारा जिन्दगी का
हमें पार उतार दो -
रूप मत बस सार दो।"[2]

ऊपर विवेचित तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वयं प्रयोगवादी कवि अपने काव्य के वस्तु और रूप-विधान सम्बंधित विचारों के क्षेत्र में एक से नहीं हैं। केवल तत्सम्बंधी नवीन प्रयोग करना ही इनका मुख्य उद्देश्य है। अस्तु, प्रयोगवादी काव्य की भाषा, छंद, अलंकार, आदि नवीन शैल्पिक प्रयोगों पर यहां विचार किया जा रहा है।

भाषा :

प्रयोगवादी कवियों ने अति वैयक्तिक अनुभूतियों को, अपनी मानसिक कुंठाओं एवं अवचेतन, अर्धचेतन दिवास्वप्नों को वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक संकेतों के

1- दे0 'प्रगतिवाद : एक समीक्षा' - पृ0 126

2- दे0 'अरी ओ करुणा प्रभामय' - पृ0 33

द्वारा यथार्थपरक अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए नवीन शब्दों, प्रतीकों, बिम्बों, उपमानों का प्रयोग करते हुए नई काव्य भाषा का निर्माण किया है। इन कवियों के मतानुसार 'शब्दों के प्रचलित अर्थ रूढ़ हो गये हैं उनमें साधारण अर्थ से बड़ा अर्थ भरने की आवश्यकता है।'[1] ऊपर उद्धरित आशय की पुष्टि करने के लिए इन कवियों ने अपने काव्य में विज्ञान, भूगोल, मनोविज्ञान, दर्शन आदि जैसे विविध शास्त्रों की पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया है। इसके फलस्वरूप भाषा में नयापन आ गया है। इनके लिए बाजार, गांव, गली-कूंचों व कल-कारखानों की शब्दावली भी त्याज्य नहीं है। इस प्रकार इन कवियों ने भाषा को लोक-जीवन के अधिक निकट से देखने का प्रयत्न किया है। 'शब्द के प्रयोग के क्षेत्र में कुछ लेखकों ने बड़े साहस का परिचय दिया है। लोक जीवन से शब्द ग्रहण करने के अतिरिक्त सामान्य स्तर से बहुत से प्रयोग लिये गये हैं। भाषा का मद सेवन भी नये लेखक को स्वीकार्य है यदि वह उपयुक्त वातावरण के निर्माण में योग देता है।'[2] इसी प्रकार द्रष्टव्य है - 'भाषा जीवन और समाज का प्रबल शस्त्र है किन्तु उसे जीवन से अलग होकर नहीं, जीवन में ही रहना है।'[3] इन कवियों ने काव्य में घिसे पिटे परम्परागत शब्दों की अवहेलना करते हुए आधुनिक जीवन संदर्भों से नई व्यंजना बोधक शब्दों को स्थान दिया है। शब्दों के अव्यवस्थित, अव्यवहारिक एवं व्याकरण विरुद्ध प्रयोग भी इनको नई शब्द प्रकृति के सौंदर्य-विधायक अंग के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। रंगिम, उकसरी, विलमना, लम्बापित, किरनीली, जैसे शब्द उक्त नई शब्द प्रकृति के सुंदर उदाहरण हैं। इन कवियों ने भाषा की व्यंजना-शक्ति को बढ़ाने के लिए अनेक प्रकार के भाव-संकेत-चिन्हों का प्रयोग किया गया है - 'भाषा

1- सं0 अज्ञेय- तार सप्तक(1943) पृ0 270

2- डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी-हिन्दी नवलेखन , पृ0 190

3- देखिये- 'दूसरा सप्तक' - पृ0 184

को अपर्याप्त पाकर विराम संकेतों से, अंकों और सीधी-तिरछी लकीरों से छोटे-बड़े टाइप से, सीधे-उलटे अक्षरों लोगों और स्थानों के नामों से, अधूरे वाक्यों से-सभी प्रकार के इतर साधनों से कवि उद्योग करने लगा कि अपनी उलझी हुई संवेदना की सृष्टि पाठकों तक अक्षुण्ण पहुंच सके।"[1] इसी प्रकार प्रयोगवादी काव्य में भाषा-शिल्प के पुराने उपकरणों के स्थान पर नवीन उपमेय, उपमानों, प्रतीकों, बिम्बों, अलंकारों व मुहावरों का प्रयोग किया गया है। इसमें प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग होने के कारण इस पर आधुनिक प्रतीकवाद का प्रभाव दृष्टिगत होता है। प्रकाश के लिए दीप, मशाल व तारा जैसे परम्पराभुक्त प्राचीन प्रतीकों का त्याग करके 'टार्च' के नवीन प्रतीक का प्रयोग किया गया है। प्रतीकों की भांति ही सूक्ष्म-भाव-बोधों के नये स्तरों को तदनुरूप सशक्त अभिव्यक्ति देने के लिए इन कवियों ने नये बिम्ब-विधानों का भी निर्माण किया है। डा० केदारनाथ सिंह तो आधुनिक कवियों की श्रेष्ठता उनके द्वारा निर्मित बिम्बों पर मानते हुए, काव्य में बिम्ब-विधान की अनिवार्य आवश्यकता पर बल देते हैं - यथा "इस कविता में मैं सबसे अधिक ध्यान देता हूं बिम्ब-विधान पर। बिम्ब-विधान का सम्बंध जितना काव्य की विषय-वस्तु से होता है, उतना ही उसके रूप से भी। विषय को वह मूर्त और ग्राह्य बनाता है। रूप को संक्षिप्त और दीप्त।"[2] अत: यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रयोगवादी काव्य में नवीन-बिम्बों-प्रतीकों तथा उपमानों के द्वारा पुराने अलंकारों की उपेक्षा की गई है। उदाहरण के लिए यहां कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं जिनमें नये भाव बोधों को व्यक्त करनेवाले नये उपमानों का प्रयोग किया गया है। यथा -

"आपरेशन थियेटर सी'
जो हर काम करते हुए भी चुप है।'
बिजली के स्टव सी जो एकदम सुर्ख हो जाती है।'
मेरे सपने इस तरह टूट गये जैसे
भुंजा हुआ पापड़।
'पूर्व दिशा में हड्डी के रंगवाला बादल

1- अज्ञेय- 'आत्मने पद' (प्र०सं०) पृ० 36
2- डा० केदारनाथ सिंह-तीसरा सप्तक-पृ० 181

लेटा है। इसी प्रकार गुण वाचक विशेषणों के रूप में भी उपमानों का सटीक प्रयोग हुआ है।

यथा- बालों में अजब सुनहरापन
झरती ज्यों रेशम की किरनें, संझा की बदरी से
छन छन ।[1] तथा

`चुम्बनों की पांखुरी के दो जवान गुलाब मेरी गोद में`।[2] के द्वारा `रेशम की किरणों` सुनहले बाल के लिए तथा `दो जवान गुलाब` `मसृण अरुण पैरों` की व्यंजना के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

छंद-विधान :

अन्य उपकरणों की भांतिप्रयोगवादी कवियों ने छंद-सीमाओं के बंधनों से भी मुक्त होकर नवीन एवं स्वच्छंद छन्दों का प्रयोग किया है। बौद्धिकता का अत्याग्रह होने के कारण अधिकांश रचनाएं लय और संगीतहीन हो गई हैं। उसमें एक प्रकार की गद्यात्मकता का समावेश हो गया है। यही कारण है कि कतिपय प्रयोगवादी कवियों ने तथाकथित गद्यात्मकता के विरुद्ध अपनी मांग करते हुए काव्य में लय की महत्ता प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया है। डॉ० जगदीशगुप्त जी के शब्दों में -"कविता के लिए मैं लय को अनिवार्य मानता हूं। लय से ही संगीतात्मकता उत्पन्न होती है और छंद की भी सृष्टि होती है। किन्तु लय शब्द की ही नहीं अर्थ की भी हो सकती है। आज जब कविता इस अर्थ की लय को पकड़कर चलती है तो छंद का स्थूल रूप पीछे छूट जाता है जो उसके लयात्मक अर्थ तत्व पर ध्यान नहीं देते उन्हें वह गद्य में ही लिखी प्रतीत होने लगती है। कुछ को तो मुक्त छंद भी गद्य

1- डा० धर्मवीर भारती- ठंडा लोहा, द्वि.सं० (1970) पृ० 7

2- वही- पृ० 4

जान पड़ता है।"[1] स्वयं अज्ञेय जी ने भी कवि निराला जी की भांति लयाधारित मुक्त छंद का समर्थन किया है। "आज की कविता बोलचाल की अन्विति मांगती है पर गद्य की लय नहीं मांगती। तुक-ताल का बंधन उसने अनात्यन्तिक मान लिया है पर लय को वह उक्ति का अभिन्न अंग मानती है।"[2]

ऐसी रचनाएं जो कविता के नाम पर गद्य का नमूना बन पाई हैं, उसकी कुछ पंक्तियां यहां द्रष्टव्य हैं यथा-

> "मैं आज भी जिन्दा हूं उस हस्ताक्षर की भांति जो मजाक में यों ही किसी वट-वृक्ष के नीचे पिकनिक, तफरीह में लिख दिया गया था। एक तेज धार वाले फौलाद की नोक अब भी मेरी छाती में गड़ी है और उस वट-वृक्ष का घायल सीना, उस दाग की रक्षा हर मौसम में करता है।"[3]

ऊपर उद्धृत कविता के इस रूप पर अंग्रेजी कविता का प्रभाव है। किन्तु अंग्रेजी साहित्य के आलोचक भी ऐसी गद्यात्मक प्रवृत्ति को काव्य के लिए उचित नहीं मानते। इस प्रकार की 'फ्रीवर्स' के नाम पर बहुत सा कृत्रिम गद्य लिखा गया है। यही कारण है कि काव्य में गद्यात्मक अरुचि व कोरी शुष्कता से ऊब कर परवर्ती प्रयोगवादी कवियों ने लय के आधार पर वर्णिक, मात्रिक और रूपांतर मुक्त छंदों के भेदों पर विविध प्रकार के नये छंदों का प्रयोग किया है।

1- डा० जगदीश गुप्त- नयी कविता (1956) 'अर्थ की लय'-

2- नई कविता, अंक-2

3- नई कविता, अंक- 1

ऊपर विवेचित तथ्यों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि प्रयोगवादी काव्य के कथ्य और शिल्प दोनों में वैविध्य पूर्ण विस्तार हुआ है। इससे पूर्ववर्ती काव्य-धारा से भिन्नता सूचक नई काव्य-चेतना का बोध होता है। इसमें भाव तत्व की अपेक्षा बुद्धि तत्व की प्रधानता के कारण सरलतया साधारणीकरण नहीं हो पाता या तो काव्य साधारणीकरण के स्तर से बिलकुल ही गिर गया है। अनर्गल और मनमाने ढंग के भाषा के एकांतिक प्रयोगों की बहुलता ने भी काव्य को अस्पष्ट व दुर्बोध्य बना दिया है। यह काव्य-धारा अति-वैयक्तिकता के धरातल पर आधारित होने के परिणाम स्वरूप इसमें वैयक्तिक कुंठा व अभाव जनित मानसिक रुग्णता, अनैतिक व अश्लील भाव-क्रियाओं को स्पर्श करनेवाली विचारधारा के नग्न चित्रण के रूप में कूड़ा-कर्कट का भी समावेश हो गया है। अतः इसमें जीवन को स्वस्थ और शाश्वत् दृष्टिकोण से देखनेवाली क्रियाशीलता का अभाव है। आज की कविता से मांग करते हुए डा० भगीरथ मिश्र जी ने अपने प्राक्कथन में कहा है कि - 'कविता जीवन की सृष्टि करती है। रूप, चेष्टा, गति और सौंदर्य उसके अंग हैं। उसका विकास करना और मानव-संस्कृति को आगे बढ़ने की नई कल्पना देना, समाज के सौंदर्य-संस्कार को और समृद्ध करना है, और नवीन कल्पना को प्रोत्साहित कर जीवन में सरसता का संचार करना, आज के युग की कविता से मांग है। अतः उसकी समस्त प्रयोगशीलता को इसी की पूर्ति के लिए प्रयत्न करना अभीष्ट है।[1]

नई कविता :

वस्तुतः नई कविता प्रयोगवादी काव्य धारा का ही एक विशिष्ट एवं विकसित रूप का नाम है। अतः कतिपय सुज्ञ आलोचकों ने इसे प्रयोगवाद का पर्याय भी माना है। हिन्दी की आधुनिक (छायावादोत्तर) काव्य-धारा की प्रेरक भाव-भूमि

1- दे0 श्रीरामकुमार 'खण्डेलवाल' - हिन्दी काव्य और प्रयोगवाद- (प्राक्कथन-डा0 भगीरथ मिश्र) पृ0 5

बहुधा एक समान युगीन परिवेश पर आधारित होने के कारण प्रयोगवादी एवं नई कविता के कवियों को अलग करके नहीं देखा जा सकता ।[1] तात्पर्य यह है कि जो कवि प्रयोगवादी काव्य-रचना कर रहे थे वे ही कवि नई कविता भी करने लगे । दोनों प्रकार की काव्य-धारा में कुछ अंतर के होते हुए उनके कथ्य०७७ एवं शैली -शिल्प के विविध नवीन उपकरणों में एक समान विशेषताएं दृष्टिगत होती हैं । यही कारण है कि हिन्दी की काव्य-धारा को प्रयोगवाद, रूपवाद नकेनवाद(प्रपद्यवाद), नई कविता आदि विभिन्न नामों से अभिहित किया जाने लगा । जिनके कारण हिन्दी का साधारण पाठक अपने को 'भूला-सा', भ्रमा सा, ठगा सा पाता है ।[2] यहाँ यह स्मरणीय है कि लुई मैक्नीस, आडेन, स्पैंडर आदि अंग्रेजी कवियों ने 'न्यू पोयट्री, नाम से एक नया काव्य-आंदोलन चलाया था जिसका प्रभाव हिन्दी के कवियों पर भी पडा । अतः कतिपय आलोचक इसे 'न्यू पोयट्री ' का ही संस्करण मानते हैं ।

प्रयोगवादी और नई कविता के बीच एक स्वतंत्र अन्तर स्थापित रेखा खींचना कठिन है क्योंकि कभी-कभी अपनी पूर्ववर्ती परम्पराओं के साथ ही नई प्रवृत्तियां भी जन्मती रहती हैं । नई कविता के सम्बंध में भी यही बात घटित होती है । फिर भी एक मोटे तौर पर सन् 1950 के लगभग से हिन्दी केप्रयोगवादी कवि अपनी कविता को प्रयोगवादी काव्य रचना से एक कदम और आगे की ओर बढ़ी हुई बताने के लिए नई कविता की संज्ञा से अभिहित करने लगे थे । अज्ञेय जी ने तथाकथित

1- नयी कविता को प्रयोगवाद से सर्वथा भिन्न प्रयत्न मानना भी उचित नहीं है । प्रत्युत यह ठीक मालूम पडता है कि नयी कविता प्रयोगवाद का स्वस्थ और संतुलित दिशा में सम्पन्न एक ऐसा विकास है जो किन्हीं मानियों में प्रगतिशील सामाजिक चेतना को स्वीकार करके नये मार्गों की ओर अग्रसर हो रही है । साथ ही यह कहना भी गलत है कि नयी कविता आकस्मिक रूप से आई हुई काव्य धारा है । उसका गोत्रीय सम्बंध तो प्रयोगवाद से ही ठहरता है । (द्र० डा० हरिचरण शर्मा- नयी कविता : नये धरातल-पृ० 6

2- दे० डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय- द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 210

कवियों पर प्रथम चोट भी की बाद में उसे सत्कारा भी है ।

'आ, तू आ,
हाँ, आ,
मेरे पैरों पर की छाप छाप पर रखता पैर,
मिटाता उसे,
मुझे मुँह भर गाली देता-
आ, तू आ ?
जयी, युग नेता, पथ-प्रवर्तक
आ, तू आ,
ओ गतानुगामी ।

ऊपर विवेचित तथ्यों के आलोक में यह स्पष्ट हो जाता है कि अज्ञेय जी की प्रयोगवादी काव्य-धारा से अलगाव स्थापित करने के हेतु स्वयं प्रयोगवादी कवियों एवं सप्तकेतर कवियों ने अपनी काव्य धारा के स्वर को नई कविता से जोड़कर देखने की चेष्टा की । वस्तुत: नई कविता की प्रकृति विशेष को देखते हुए तथाकथित नये कवियों द्वारा प्रदत्त नाम 'नई कविता' अपनी निजी विशेषता का स्वयं प्रमाण है । उक्त मत की पुष्टि के लिए डा० हरिचरण शर्मा जी के विचार ध्यातव्य हैं । 'प्रयोगवाद एक ऐसा पौधा था जिसकी शाखाएं व पत्तियाँ कांट-छांट के अभाव में मनमाने ढंग से फैलती जा रही थीं, जबकि नयी कविता एक कटी-छंटी, सजाई-संवारी लता है जिसमें व्यवस्था है, संतुलन है और यथार्थ का रस खींच कर हरी-भरी बनी रहने की उमंग । फिर ऐसी स्थिति में नयी कविता प्रयोगवाद का छद्म नाम न होकर संशोधित नाम हो सकता है जो अपने अंचल में संतुलित जीवन-दृष्टि और प्रयोगवाद की प्रयोगशील प्रवृत्ति को लिए जी रहा है ।"[1]

1- डा० हरिचरण शर्मा- नयी कविता : नये धरातल- पृ० 6

अत: इससे यह स्पष्ट है कि नई कविता में प्रयोगवाद का स्वस्थ एवं संतुलित रूप विकसित हो पाया है। उसकी वस्तु-योजना एवं शैली-शिल्प योजना के क्षेत्र में इन कवियों ने युग-सापेक्षता के साथ औचित्यपूर्ण दृष्टि व विवेक से कवि-कर्म का निर्वाह करने का प्रयास किया है।

ऊपर यह कहा जा चुका है कि नई कविता की प्रेरक भूमि वही है जो प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद की थी। यही कारण है कि प्रयोगवादी काव्य धारा के कवि अंतत: नई कविता के क्षेत्र में परिणित हो जाते हैं। दोनों वर्ग के कवि एक दूसरे की काव्य धारा से इतने मिले जुले हैं कि उन्हें अलग करके देखना कठिन हो जाता है कि वे कितनी दूर तक 'शुद्ध-प्रयोगवादी' हैं और कितनी हद तक नई कविता के कवि हैं। यही कारण है कि प्राय: सुधी आलोचकों ने दोनों प्रकार के कवियों को एक साथ रखकर देखने का प्रयास करते हुए 'नयी कविता' और 'प्रयोगवाद' के मध्य अन्तर-विभाजक रेखा खींचना पसंद नहीं किया। इस सम्बंध में डा० कुमार विमल के शब्दों में यह कहना समीचीन होगा कि - 'आधुनिक हिन्दी कविता के सभी पुरुषवाची आन्दोलनों-छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, प्रपद्यवाद इत्यादि - के बीच-'नयी कविता' 'नाम्नैव स्त्रीति पेशलम्' के आधार पर भी अधिक ललाम मालूम पड़ती है।'[1]

विषयगत प्रवृत्तियां :

नई कविता में नूतनता का सम्यक् आग्रह उसके कथ्य और शैली-शिल्प दोनों ही क्षेत्रों में देखा जा सकता है। उसकी विषयगत मूल स्थापनाओं के मुख्य रूप से चार तत्व हैं।

1- नयी कविता- नयी आलोचना और कला- पृ०(च)

1- आधुनिकता में विश्वास ।

2- वर्जनाओं तथा कुंठाओं से मुक्त यथार्थ का समर्थन ।

3- विवेक के आधार पर मुक्त यथार्थ का साक्षात्कार ।

4- क्षण के जीवन के दायित्व के साथ नितान्त समसामयिकता के दायित्व को स्वीकारना ।

अतः इससे यह स्पष्ट है कि नई कविता में अपनी पूर्ववर्ती प्रयोगवादी काव्य-धारा की अपेक्षा समस्त जीवन प्रवाह से मिलकर एक रूप होने की चेष्टा अधिक है। इस दृष्टि से उसने प्रयोगवादी सीमा का विस्तार किया है। इसकी प्रवृत्तिगत प्रवृत्तियों को निम्नलिखित रूप से विश्लेषित किया जा सकता है।

(1) जीवन के प्रति आस्था एवं लोक सम्पृक्ति :

(2) पुराने मूल्यों की अस्वीकृति एवं नवीन वस्तु-अंकन की प्रवृत्ति ।

(3) व्यंग्य व गद्यात्मकता

(4) समसामयिक व प्रासंगिक प्रवृत्तियों का आग्रह ।

कतिपय विद्वान नई कविता में प्राप्त अनास्था, निराशा, व्यक्तिवादी कुण्ठा और मरण-धर्मिता की भावना के चित्रांकन के कारण उसे पश्चिमी परिवेश की उपज मानते हैं। वस्तुतः इसमें कुछ सत्यांश है क्योंकि भारतीय संस्कृति अपने मूल रूप में आशावादी जीवन-दर्शन पर आधारित है। वह भोगवादी दृष्टिकोण को अध्यात्म भाव से समन्वित क होने पर ही स्वीकार करती है किन्तु यहां यह स्मरणीय है कि आज का भारतीय जीवन पाश्चात्य वैज्ञानिक व भौतिक जीवन मूल्यों से अनेक रूप में

प्रभावित हुआ है। हमारी जीवन दृष्टि में भी तदनुरूप परिवर्तन आ गया है। इस रूप में आज का जीवन नई अनुभूतियों, एवं नवीन मूल्य संक्रमणों की स्थितियों से गुजर रहा है। इसका वास्तविक चित्रांकन नई कविता में अस्तित्ववादी या लघुमानववादी क्षण भोग की स्वतंत्र प्रवृत्ति के रूप में सर्वाधिक रूप में मिलता है। जीवन की समस्त निराशा, हताशा व कुण्ठाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत कविता की प्रथम विशेषता है। जहां प्रयोगवादी काव्य धारा के कवि नितांत वैयक्तिक भाव-बोध की भूमि पर अपने अहं की प्रवृत्तियों का विस्फालन करते हुए दृष्टिगत होते हैं वहां नई कविता के कवि सामाजिकता से अपना सम्बंध स्थापित करने का प्रयास भी करते हैं। स्वयं प्रयोगवादी कवि भी अपने परिवेश से आहत होकर लोक धरातल पर अपने को प्रतिष्ठित करना अभीष्ट समझने लगे हैं। यही कारण है कि नई कविता में समष्टिमूलक भावों की व्यंजना का स्वर भी बलवती होता जा रहा है। नये कवियों ने लघु मानव की प्रतिष्ठा की। यह मानव अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक है। अहं को अपनाया तो है, किन्तु अवसर आने पर समाज में समर्पित भी कर देता है। अज्ञेय जी की 'यह दीप अकेला' नामक कविता इसका सुंदर उदाहरण है। भारतभूषण, धर्मवीर भारती तथा रघुवीर सहाय की कविताओं में भी इसी प्रकार समाजोन्मुख होने का भाव व्यक्त हुआ है। प्रयोगवादी काव्य की निराशा, हताशा, अनास्था आदि भावों की परिधि से निकल कर इसमें आशामूलक भावों की अभिव्यक्ति हुई है। तदुपरान्त इसमें सामाजिकता के संदर्भ मुख्यत: तीन रूपों में उद्घाटित हुए हैं :-

1- समाज की खोखली स्थिति के चित्रण में।

2- सामाजिक दायित्व के रूप में।

3- समाज-कल्याण के प्रेरक तत्वों के रूप में।'[1]

1- दे0 डा0 हरिचरण शर्मा- नयी कविता : नये धरातल, पृ0 112

इससे यह स्पष्ट है कि नई कविता ने सामाजिक क्षेत्र में अपनी पूर्ववर्ती छायावादी, प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी काव्य की व्यक्ति और समाज पर आधारित संकुचित सीमा से निकल कर अपने कथ्य का काफी हद तक विस्तार किया है। इसका वर्ण्य-विषय एक बहुत बड़े व व्यापक लोक-समष्टि के धरातल, को छू लेता है। इसकी विशेषता के रूप में यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि इसमें वर्णित व्यक्ति की समस्याएं एक प्रकार से समूचे जन-विराट की समस्याओं के प्रतिनिधित्व के रूप में अभिव्यक्त हुई हैं। भारतभूषण की 'विदेह' अनंतकुमार पाषाण की 'बम्बई का क्लर्क' डा० जगदीश गुप्त की 'पहेली' लक्ष्मीकांत वर्मा की 'मृतात्मा की वसीयत' और अज्ञेय जी की 'महानगर रात' आदि कविताओं में तथाकथित भावों को प्रतिबिम्बित किया गया है।

(2) नई कविता की दूसरी प्रमुख विशेषता है नूतन वस्तुओं के यथार्थ चित्रण की प्रवृत्ति। इस दृष्टि से इसमें जीवन की प्रत्येक क्षुद्र से क्षुद्र त्याज्य से त्याज्य वस्तुओं के सौंदर्यांकन की अभिरुचि देखी जा सकती है जिसके परिणाम स्वरूप इसके कथ्य का विस्तार हुआ है। नवीन वस्तु-बोध के चित्रांकन के प्रति अत्याग्रह होने के कारण नये कवियों ने अपने पूर्व के सभी प्रकार के परम्परा-भुक्त नैतिक बन्धनों तथा काव्य-साहित्य विषयक प्राचीन मूल्यादर्शों की उपेक्षा करते हुए नये मूल्यों की प्रतिष्ठा की है। नई कविता के परिवर्तित नये रूपों की ओर दृष्टिपात करते हुए श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा जी ने नई कविता से गृहीत आशय को निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत किया है। यथा -

(1) उसकी नयी परिप्रेक्षणीयता
(2) अनुभवों के नये रूपान्तरण और उनके नये अनुभव-क्षेत्र
(3) सौन्दर्य बोध के नये धरातल
(4) परम्परागत विकृत मूल्यों के परिष्करण
(5) मतवादी भ्रान्तियों से मुक्ति पाने की कामना

(6) तदात्मक सत्य की वे परिस्थितियाँ जिनमें हमारा रागात्मक रस बोध नये आयामों का अन्वेषण करने की सामर्थ्य पाता है।[1]

इसमें अनुभूति एवं उसके भाव-वहन की शैली दोनों ही पक्षों में कवि की अन्वेषण परक प्रक्रिया दृष्टिगत होती है। हाँ, यह अवश्य है कि इसके भावों का अन्वेषण बौद्धिक एवं तार्किक कसौटी पर आधारित होने के कारण इसके साथ पाठकों का साधारणीकरण या तादात्म्य न होकर विशेषीकरण ही होता है। वैज्ञानिक मूल्य चिन्तन की दृष्टि से विश्लेषित व आविष्कृत होने के कारण नई कविता का अधिकांश चिन्तन भावुकता की अपेक्षा बौद्धिकता के उपकरणों से निर्मित हुआ है। यही कारण है कि नई कविता में वर्णित ईश्वर, धर्म, कर्म, प्रकृति आदि धार्मिक मूल्यों, आदर्शों और तत्सम्बंधी विचारों की नई व्याख्या आधुनिक वैज्ञानिक भाव-बोध के नये-नये स्तरों पर की जाने से प्राचीन आस्थावादी भारतीय जीवन दृष्टि व मूल्यों को ठेस पहुंची है। भारतभूषण, देवराज, नरेश मेहता, कुंवर नारायण, राजेन्द्र माथुर और धर्मवीर भारती आदि कवियों ने ऊपर कथित प्राचीन आदर्शों व आस्थापरक विचारों को खंडित करने का प्रयास किया है। ईश्वर के प्रति अनास्था को प्रकट करनेवाली यह पंक्ति देखिए -

पत्थर न घटता है न बढ़ता है रंचमात्र
मूर्ति बड़ी होती जा रही थी
क्योंकि वे स्वयं छोटे होते जाते थे
भूलकर एक बड़ा सत्य यह
समवेत जन ने
अपने ही हाथों से गढ़ी हुई
देवता की मूर्ति यह तोड़ डाली[2]

1- इतिहास पुरुष- पृ0 9

2- भारतभूषण अग्रवाल : ओ अप्रस्तुत मन , पृ0 124-125

इसी प्रकार आधुनिक विघटन व ह्रासमूलक नये भाव-बोधों के आधार पर प्रेम, प्रकृति, नारी, व्यक्ति समाज, राष्ट्र और विश्व तक के संदर्भों को नये दृष्टिकोणों से नई कविता में आस्थापित करने का प्रयास किया गया है।

पाश्चात्य संस्कृति के जन-जीवन में प्रवेश व वैज्ञानिक-भौतिक सभ्यता के अत्यधिक विकास के फलस्वरूप जन-जीवन में आचरण-मर्यादा, के विपरीत अनैतिकता, दम्भ, आडम्बर, कृत्रिमता, दिखावा, तथा भ्रष्टाचार जनित प्रवृत्तियां उभर उठी हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कथनी व करनी के बीच महद् अंतर उपस्थित हो गया है। अत: आज का व्यक्ति दूसरे व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व के प्रतिआशंकित हो उठा है। जीवन में एक प्रकार का खोखलापन आ गया है। समसामयिक इस कटुसत्य की विविध अनुभूतियों को नई कविता में व्यंग्यात्मक रूप से अभिव्यक्ति मिली है। तथाकथित खोखलेपन का पर्दाफाश करने की प्रवृति के कारण कवि का आलोचक रूप गद्यात्मक रूप में उजागर हो उठा है। इसमें उसकी यथार्थपरक दृष्टि के दर्शन होते हैं। यही कारण है कि नई कविता में भावुकता, कल्पना और आदर्श के सौन्दर्यांकन की प्रवृत्ति का नितांत अभाव है। साथ ही उसमें अपने समसामयिक जीवन के विविध स्तरों, संदर्भों और परिवर्तित परिवेशों को आत्मसात् करने का आग्रह भी पाया जाता है। यही कारण है कि अधिकांश नये कवियों ने आधुनिक व सामयिक परिवेश के माध्यम से पौराणिक, ऐतिहासिक संदर्भ-सूत्रों की भी नई व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। अपने परिवेश से प्रतिबद्ध व प्रवर्तमान राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, पारिवारिक, सांस्कृतिक, व नैतिक आदि सभी प्रकार की समस्याओं को उसके नग्न रूप में चित्रांकित करने की चेष्टा नई कविता में की गई है।

शैली-शिल्पगत विशेषताएं :

नई कविता का वर्ण्य-विषय नूतन भाव-बोध के नये आयामों पर आधारित होने के कारण उसके प्रायोगिक शैली-शिल्प के विविध उपकरणों में भी नवीनता व मौलिकता प्रसूत दृष्टि का आग्रह रखा गया है। वस्तुत: इसका विस्तृत विवेचन प्रयोग-वादी काव्य धारा में कर दिया गया है। जिससे यह स्पष्ट करने का सोदाहरण प्रयास किया गया है कि उसके भाव पक्ष की भांति ही कला पक्ष भी अनेकोन्मुख नवीनताओं से ग्रस्त है। भाषा, बिम्ब, प्रतीक, छंद आदि के क्षेत्र में बौद्धिक प्रयासों की सृष्टि की गई है। इस दृष्टि से नई कविता आधुनिक पाश्चात्य कलावादी काव्य-प्रवृत्तियों से

सर्वाधिक रूप से प्रभावित है। साथ ही उसे जन-सुलभ व जन-बोध्य बनाने के लिए अनुभूति की सहायता, सरलता के साथ अभिव्यक्ति के पक्ष को भी जन-भाषा, लोकधुनों, व ग्राम-गीतों की शैली से मिलाकर देखने का प्रयास किया गया है। जहां प्रयोगवादी कवियों का दृष्टिकोण कला-कला के लिए था वहां परवर्ती प्रयोगवाद के नए कवियों के दृष्टिकोण में कुछ परिवर्तन आया, वे कला को सामाजिकता के साथ जोड़कर देखने की चेष्टा करने लगे। अतएव वे सभी प्रकार की अतियों को छोड़कर काव्य में विवेकपूर्ण दृष्टि द्वारा संतुलित प्रयोगों में रुचि लेने लगे हैं।

इन कवियों ने रस के क्षेत्र में अभूतपूर्व पराक्रम किया है। भाव-क्षेत्र के नवीन उपकरणों के आधार पर काव्य में 'उदात्त रस' जैसे नये रसों की स्थापना भी नई कविता की प्रमुख उपलब्धि है। यहां राष्ट्रीय रसानुकूल काव्य भाषा की कोटि उपलब्ध नहीं होती। इस सम्बंध में डा० सुरेशप्रसाद गुप्त जी के विचार ध्यातव्य हैं- 'यह स्पष्ट है कि वे रस को परम्परागत सहजभाव से ग्रहण नहीं करते। उन्होंने रस की अपेक्षा विचार प्रभाव को अधिक महत्व दिया है, क्योंकि सहजानुभूति के स्थान पर विश्लेषीकरण और उक्ति-वैचित्र्य पर मुग्ध हैं।'[1] यहां यह स्मरणीय है कि इससे पूर्व स्थायी भावों को ही काव्य द्वारा निबद्धकर रस दशा तक पहुंचाने का प्रयत्न किया जाता था, किन्तु अब केवल क्षणानुभूतियों पर आधारित नवीन भाव-खण्डों, अनुभावों, व अन्तर्दशाओं की अभिव्यक्ति होने के कारण उसमें केवल प्रभाव वा चमत्कार उत्पन्न करने की सक्षमता है। यही कारण है कि नयी कविता में महाकाव्य, खण्डकाव्य, एकार्थ काव्य और प्रलम्ब गीतों जैसे काव्य-रूपों का एक खासा अभाव ही दृष्टिगत होता है। तथा च नये कवियों ने काव्य के तथाकथित प्राचीन स्वरूपों व प्रकारों पर अपना, विचार भी प्रकट नहीं किया। उपर्युक्त अन्तर्बोध की अभिव्यक्ति के लिए नई कविता में चार द्विपदियां, छ गीत, पांच दशाएं, तीन मन: स्थितियां इत्यादि जैसे शीर्षकों को देखा जा सकता है।

1- आधुनिक कवियों के काव्य-सिद्धांत, पृ० 534

उपर विवेचित तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नई कविता के कथ्य और रूप दोनों ही क्षेत्रों का अप्रत्याशित विस्तार हुआ है। उसमें प्रयुक्त अति बौद्धिक व ऊबा देनेवाले क्लिष्ट भाषा-शैली सम्बंधी प्रयोगों के कारण नई कविता भी तीसरे तार सप्तक (1959) के बाद अधिक समय तक जन ग्राह्य नहीं हो सकी। अतः कतिपय विद्वानों को नई कविता 1960 में मरती सी ज्ञात होने लगी। इतना होने के उपरान्त भी कवियों की प्रयोगात्मक दृष्टि अभी साँसें ले रही है, हिन्दी में नवगीत, अकविता, ताजी कविता, एण्टी कविता, आदि जैसे विविध रूप इसके सुंदर उदाहरण हैं।

(ख) गद्य -साहित्य

(1) उपन्यास

प्रेमचंदोत्तर कालीन उपन्यास :

प्रेमचंद के उपरान्त हिन्दी उपन्यास साहित्य को विकसित करने के पीछे अनेक प्रकार के साहित्यिक नये मानदण्डों व सिद्धांतों, के साथ ही तत्कालीन नवीन परिवेश से उत्पन्न संक्रमणात्मक मूल्यों का हाथ रहा है। इस युग के साहित्यकारों पर पाश्चात्य जीवन-दर्शन से प्रभावित फ्रायड, युंग, एडलर आदि के मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद घोर नग्न यथार्थवाद, प्रतीकवाद, अवचेतनवाद, आदि जैसी प्रवृत्तियों का प्रभाव पड़ा है। इसी समय पाश्चात्य साहित्यकारों से प्रभावित होने के परिणामस्वरूप हिन्दी साहित्य के अन्य पहलुओं की भाँति उपन्यासों में भी नवीन प्रयोगों का सूत्रपात हुआ। इन प्रयोगों पर आगे दृष्टिपात किया जायेगा। अतः विषय की दृष्टि से प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासों को मुख्य रूप से निम्नस्थ भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) मनोवैज्ञानिक उपन्यास :

जैनेन्द्र-अज्ञेय से ही प्रेमचंद की आदर्शवादी परम्परा का अंत हो जाता है। अब पात्रों के चरित्र का विश्लेषण आधुनिक मनोविज्ञान और शुद्ध मनोविश्लेषण के

के सिद्धान्तों पर किया जाने लगा। पात्रों की यौन-प्रवृत्तियों, दमित वासनाओं, काम-कुण्ठाओं तथा मानसिक रुग्णताओं आदि का विश्लेषण हिन्दी उपन्यास को प्रेमचंद्युगीन समष्टिपरक चेतना से हटाकर वैयक्तिक भाव-भूमि के स्वतंत्र धरातल पर समादृत कर देता है। इस प्रकार उपन्यास की कथा वस्तु मानसिक क्रिया-व्यापारों पर आधारित होने के कारण उसका कथानक स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर अग्रसर हुआ। जैनेन्द्रकुमार (उपन्यास- 'त्याग-पत्र', 'सुनीता' 'कल्याणी') इलाचंद जोशी ('प्रेत और छाया', 'पर्दे की रानी', 'जहाज का पंछी', 'लज्जा'), अज्ञेय ('शेखर : एक जीवनी', 'नदी के द्वीप,' 'अपने अपने अजनबी') तथा भगवतीप्रसाद वाजपेयी (दो बहनें 'मनुष्य और देवता') जैसे प्रभृति उपन्यासकारों ने अपने पात्रों का मनोवैज्ञानिक, बौद्धिक व तार्किक शैली पर आधारित चरित्र-चित्रण की सृष्टि की है। मानसिक प्रवृत्तियों के उद्घाटन के लिए इन्हें पूर्वदीप्ति और प्रतीकात्मक आदि विश्लेषण परक शैलियों का प्रयोग करना पड़ा है।

(2) समाजवादी उपन्यास :

इस धारा के प्रमुख उपन्यासकारों ने मार्क्सवादी विचारधारा से सर्वाधिक रूप में प्रभावित होकर अपने युग की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि सभी समस्याओं का हल खोजने का प्रयत्न मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्तों के द्वारा किया है। अतः इस धारा के प्रमुख उपन्यासकार यशपाल[1], रांगेयराघव[2], अमृतराय[3], नागार्जुन[4], आदि ने अपने उपन्यासों द्वारा धार्मिक अंध-विश्वासों, सामाजिक विकृतियों-विषमताओं एवं आर्थिक विसंगतियों पर कटु प्रहार किया है।

1- उपन्यास- 'दादा कामरेड, 'देश-द्रोही' 'पार्टी कामरेड'

2- उपन्यास- 'सीधा सादा रास्ता', 'विषादमठ'

3- उपन्यास- 'बीज', 'नागफनी का देश', 'हाथी के दांत'

4- उपन्यास- 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'नई पौध'

इन उपन्यासकारों ने पात्रों और घटनाओं आदि के द्वारा शोषित अथवा सर्वहारा वर्ग की समस्याओं का ही प्रतिनिधित्व किया है। बौद्धिक व साम्यवादी विचारधारा के द्वारा प्र तथाकथित वर्ग में क्रांति व प्रगतिवादी भावना उत्पन्न करके वर्ग चेतना अथवा वर्ग संघर्ष को जन्म देना इन उपन्यासकारों का प्रमुख लक्ष्य है।

(3) सामाजिक उपन्यास :

सामाजिक समस्याओं का चित्रांकन प्रेमचन्द युग के अनेक लेखकों ने किया था। इस परंपरा का विकास स्वतंत्रता के पश्चात् दृष्टिगत होता है। ऐसे उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का जाल आदि से अंत तक बिछा होता है। तथोक्त समस्याओं के हल के लिए उपन्यासकार अपनी कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन, वातावरण, आदि की योजना करता है। आज के समस्यामूलक उपन्यास प्राय: इसी कोटि के उपन्यास हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने समस्या उपन्यास (Problem Novel) को सामाजिक उपन्यास के अन्तर्गत स्वीकार किया है।[1] स्वतंत्रताकालीन सामाजिक समस्यामूलक उपन्यासकारों ने बौद्धिक दृष्टिकोण के आधार पर समाज की अनेकोन्मुखी समस्याओं पर विचार किया है। इस कोटि के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ के साथ रोमांटिक यथार्थ को भी अभिव्यक्ति मिली है। भगवतीचरण वर्मा के 'भूले बिसरे चित्र' 'आखिरी दांव,' भगवतीप्रसाद वाजपेयी कृत 'पिपासा', 'पतिता की साधना', उपेन्द्रनाथ अश्क के 'सितारों के खेल', 'गिरती दीवारें' - आदि उपन्यासों में सामाजिक समस्याएं मुखरित हुई हैं। इसी प्रकार के अन्य उपन्यासकार अमृतलाल नागर[2], विष्णु प्रभाकर[3], राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती[4] आदि

---

1. Joseph & Shipley-Dictionary of Word Literature .Page-286
2- दे0 बूंद और समुद्र
3- निशिकान्त, 'तट के बंधन और स्वप्नमयी'
4- गुनाहों का देवता', 'सूरज का सातवा घोड़ा'

उपन्यासकारों ने वैवाहिक समस्याओं, रूढ़िगत सामाजिक परम्पराओं, प्रेम के आदर्शों तथा स्त्री-पुरुष के टूटते-बनते सम्बंधों को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

(4) आंचलिक उपन्यास :

आंचलिक उपन्यासों का सूत्रपात स्वतंत्रता पश्चात् ही होता है। इस प्रकार के उपन्यासों में किसी गांव, नगर या प्रान्त की स्थानीय रंगत(Localcolour) के द्वारा तद् क्षेत्रीय जन-जीवन का हू-ब-हू चित्रण प्रस्तुत किया जाता है। "वस्तुत: हिन्दी में आंचलिकता का प्रयोग पश्चिम के किसी प्रयोग की नकलनहीं है। किसी अंचल का ऐसा शब्द चित्र जो समस्त राष्ट्र की संस्कृति को प्रतिध्वनित कर सके हिन्दी के आंचलिक उपन्यास की मूल विशेषता है जो तथाकथित पाश्चात्य उपन्यासों से अपना प्रस्थान-भेद सूचित करती है।"[1] इस प्रकार के उपन्यास में घटना, चरित्र, भाषा, वातावरण आदि सभी तत्वों को आंचलिक परिवेश के द्वारा भास्वर किया जाता है। इस परम्परा के मूर्धन्य उपन्यासकार हैं फणीश्वरनाथ 'रेणु'। 'मैला आंचल', 'परती परि कथा', 'पूर्णिमा गांव के', 'शूल और फूल' आदि जैसे इनके आंचलिक उपन्यास हैं। नागार्जुन ने 'बलचनामा', 'बाबा बटेसरनाथ', 'वरुण के बेटे' में मैथिल प्रदेश के लोकजीवन, तथा अमृतलाल नागर ने 'बूंद और समुद्र', में लखनऊ के जीवन को, चित्रित किया है। इसी प्रकार देवेन्द्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिये', रामशरण मिश्र का 'पानी के प्राचीर', शिवप्रसाद मिश्र का 'बहती गंगा' और शैलेश मटियानी का 'कबूतरखाना', 'बोरीवली से बोरीबंदर तक आदि उपन्यासों में स्थानीय विशेषताओं को अति नग्न यथार्थवादी स्तर पर चित्रित किया गया है।

1- शंकरदेव अवतरे 'हिन्दी साहित्य में काव्य-रूपों के प्रयोग- पृ0 184

(5) प्रयोगवादी उपन्यास :

स्वतंत्रता पश्चात् के उपन्यासकारों ने नूतन दृष्टि के सत्याग्रह के कारण शैली और शिल्प के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग किये हैं। इससे उपन्यास विधा को अपने विकास का एक नया आयाम प्राप्त हुआ है। इस प्रकार के उपन्यासों के प्रयोग विविधमुखी हैं। इन उपन्यासकारों ने युद्धोत्तर और स्वतंत्रता पश्चात् की द्विविधा मूलक परिस्थितियों से उत्पन्न नये-भाव-बोधों को अभिव्यक्ति प्रदान करनेवाले नये शैल्पिक प्रयोगों को अपनाया है। इस परम्परा के मूर्धन्य उपन्यासकार हैं धर्मवीर भारती। नाटकीय प्रयोग की दृष्टि से उनके दो महत्वपूर्ण उपन्यास हैं - 'गुनाहों का देवता' और 'सूरज का सातवा घोड़ा' कथा-शिल्प प्रयोग की दृष्टि से 'सूरज का सातवा घोड़ा' आधुनिक उपन्यास साहित्य की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है। अत: प्रयोगवादी उपन्यासों में सभी दृष्टियों से इसे 'मील का पत्थर' कहा जा सकता है। इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए डा० शंकरदेव अवतरे जी ने लिखा है - 'यों तो उपन्यास के क्षेत्र में थोड़ा-बहुत नाटकीयता का प्रयोग प्राय: सभी उपन्यासकार करते हैं और विश्वसनीयता कथा साहित्य (Fictiom) का एक सामान्य गुण है, फिर भी इसका इतना समर्थ प्रयोग करना कि नाटक की प्रत्यक्षदर्शी रोचकता को चुनौती दे सके, असाधारण शक्ति की बात है। हिन्दी साहित्य में धर्मवीर भारती कुछ कम शक्तिशाली कलाकार और कवि नहीं हैं।"[1] कथा प्रयोग की दृष्टि से सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'सोया हुआ जल', 'आयाम हीन विराट कथा वस्तु या बहुदेशीय वस्तु की की दृष्टि से नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल' और 'वह पथ बंधु था' धूमकेतु : एक श्रुति' आदि उपन्यास उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार संयुक्त लेखक शैली के प्रयोग की दृष्टि से 'ग्यारह सपनों का देश।[2] 'एक इंच मुस्कान'[3] आदि जैसे उपन्यासों की भी सृष्टि हुई है। निर्मल वर्मा (उपन्यास - वे दिन) शिवानी (चौदह फेरे), उषा प्रियम्बदा

1- शंकरदेव अवतरे 'हिन्दी साहित्य में काव्य रूपों के प्रयोग-पृ० 190

2- धर्मवीर भारती आदि

3- राजेन्द्र यादव, व मन्नू भंडारी।

(पचपन खम्भे, लाल दीवारें) तथा राजेन्द्र नहीं राधिका, मार्कण्डेय (सेमल का फूल) अनन्त गोपाल शेवडे (मृगजल) तथा डा० सत्यकेतु (मैंने होटल चलाया था) आदि उपन्यासकारों के उपन्यास इसी प्रयोगवादी परम्परा के अन्तर्गत गिनाए जा सकते हैं।

उपर्युक्त उपन्यासों के द्वारा परम्परागत रूढ़ियों का विरोध कर वस्तु और रूप के नये आयामों की प्रतिष्ठा की गई है।

प्रेमचंदोत्तर उपन्यास : कथ्य एवं शिल्पगत नवीन उपलब्धियां :

प्रेमचंद के समय तक के उपन्यासों में आमूल क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं होने पाया था। यह परिवर्तन जैनेन्द्र, इलाचंद जोशी, अज्ञेय प्रभृति कथाकारों के अभिनव प्रयत्नों के द्वारा प्रवर्तमान हुआ। डा० देवराज उपाध्याय ने समकालीन उपन्यासों के वस्तु और शिल्प में निम्नलिखित प्रवृत्तियां देखी है -

(1) सुसंगठित कथा वस्तु के प्रति उदासीनता।
(2) कथा- कुंचन।
(3) पात्रों की संख्या में ह्रास।
(4) संवादों में मनोवैज्ञानिकता।
(5) वर्णनात्मकता से अधिक नाटकीयता की प्रवृत्ति।
(6) पाठकों की प्रतिक्रिया की भिन्नता।
(7) लेखक और पात्रों का घनिष्ट सम्बंध।
(8) अनुभूति के आत्मनिष्ठ रूप की अभिव्यक्ति का लक्ष्य।
(9) रूपाकार में परिवर्तन।[1]

1- डा० देवराज उपाध्याय- आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान- पृ० 29-33

कथानक :

आधुनिक मनोविज्ञान के प्रभाव के कारण बाह्य घटना-चक्रों, और क्रिया-कलापों का स्थान मानसिक वृत्तियों एवं प्रवृत्तियों ने ले लिया। इसके फलस्वरूप औपन्यासिक कथावस्तु ह्रासोन्मुखी होती गई। आज का जीवन असम्बद्ध और जटिल परिवेशमें गुजर रहा है। अत: इसकी अनुकृति उपन्यासों में घटनाओं की अक्रमता एवं असम्बद्ध सूत्रता के रूप में हुई। आज के उपन्यासों की कथावस्तु एक दिन, एक घण्टा, एक रात तक सीमित हो गई है। यज्ञदत्त शर्मा का उपन्यास 'स्वप्न -खिल उठा' में केवल एक घण्टे के कथानक में पूरे सौ वर्षों की पृष्ठभूमि गुम्फित कर दी गई है। गिरधर गोपाल कृत 'चांदनी के खण्डहर' उपन्यास में सारा घटना चक्र एक दिन में ही गतिमान हुआ है। आज के उपन्यासों में किसी प्रधान कथा की सहायता के लिए गौण कथाएं नहीं चलती वरन् अनेक प्रासंगिक कथाओं का तारतम्य और एक कथा में से दूसरी कथा का विकास उपन्यास को शिल्प के नये मोड़ पर उपस्थित कर देता है। इस दृष्टि से डा० धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवां घोड़ा' देखा जा सकता है। स्वातंत्र्योत्तर युग के उपन्यास प्राय: मानवीय संवेदनाओं पर आधारित होने के कारण उसके कथा शिल्प में निम्नांकित शैलियों का सूत्रपात हुआ है[1]-

(1) वर्णनात्मक शिल्प विधि।
(2) विश्लेषणात्मक शिल्प विधि।
(3) प्रतीकात्मक शिल्प विधि।
(4) नाटकीय शिल्प विधि।
(5) समन्वित शिल्प विधि।

1- डे० प्रेम भटनागर 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद- (प्र० सं०) पृ० 80

ऊपर निर्दिष्ट कथा-शिल्पगत उपन्यासों का कथाचक्र मनोजगत् के सूक्ष्म व्यापारों को लेकर गतिशील होता है। सूक्ष्म कथानक की अभिव्यंजना के लिए बिम्बों, प्रतीकों तथा संकेत शैली आदि विविध रूपों का नया प्रयोग स्वातंत्र्योत्तर कालीन उपन्यास की प्रमुख विशेषता है। राजकमल का 'मछली मरी हुई' अज्ञेय का 'नदी के द्वीप' तथा धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवा घोड़ा' आदि उपन्यास इसके सुन्दर उदाहरण हैं।

पात्र एवं चरित्र-चित्रण :

चरित्र चित्रण प्राय: दो प्रकार की शैली से किया जाता है। यथा- एक वर्णनात्मक चरित्र चित्रण प्रधान शैली से और दूसरा विश्लेषणात्मक अथवा नाटकीयता पूर्ण चरित्र चित्रण प्रधान शैली से। प्रथम प्रकार की शैली के पात्र प्राय: विशेष प्रकार के अथवा (टाइप) होते हैं। लेखक स्वयं अपने पात्रों की विभिन्न दशाओं तथा गतिविधियों के सम्बंध में अपना विचार प्रस्तुत करता है। अत: यहां पात्रों का स्वतंत्र विकास नहीं हो पाता। प्रेमचंद तक के पात्र प्राय: (टाइप) होने के कारण वे वर्ग-विशेष की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। किन्तु प्रेमचंद के पश्चात् इस परम्परा का अंत हो जाता है। उपन्यासों में नाटकीयता का सूत्रपात होने के कारण अब उपन्यासों में लेखक अपने पात्रों एवं पाठकों के बीच दीवार बनकर उपस्थित नहीं होता। जैनेन्द्र, इलाचंद जोशी, अज्ञेय आदि के उपन्यासों के पात्रों को मनोवैज्ञानिक धरातल प्राप्त हुआ है। इसके फलस्वरूप पात्रों की संख्या गौण व ह्रास होती गई। तात्पर्य यह है कि इन पात्रों के द्वारा मनोविश्लेषणात्मक चरित्र-चित्रण की प्रति स्थापना की गई है। जैनेन्द्र की 'मृणाल', इलाचंद जोशी की 'लज्जा' अज्ञेय के 'शशि और 'शेखर' ऐसे ही पात्र हैं। तथाकथित विश्लेषणात्मक चरित्रांकन की विधि अनेक रूपों द्वारा प्रस्तुत की गई है। यथा पूर्व वृत्तात्मक विधि द्वारा ('त्याग-पत्र'), सहस्मृति- परीक्षण द्वारा ('जहाज का पंछी') और स्वप्न विश्लेषण

विधि द्वारा (`शेखर : एक जीवनी` आदि)। आज के उपन्यासों में अन्तश्चेतनावादी यथार्थ के प्रभाव के कारण नायक के लिए चरित्रवान होना अत्यावश्यक नहीं माना गया, चरित्रहीन नायकों की भी सृष्टि के द्वारा पात्रों की सहजता, स्वाभाविकता आदि प्राकृत गुणों को उभार कर अपने युग के समस्त परिवेश को यथावत देखने की चेष्टा की गई है। कहीं-कहीं `नायक हीनता` अथवा `गुमनाम नायक` (एनानिमस हीरो) का भी प्रयोग किया गया है। इस प्रकार के नायकों व पात्रों के द्वारा आज के खण्डित, अस्तित्वहीन और लघु मानव वादी चरित्रों का चित्रांकन किया गया है। इस दृष्टि से आज के पात्रों की संभावनाओं पर दृष्टिपात करते हुए डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का यह विचार अंकित करना समीचीन होगा- `आज की कहानी कही-सुनी नहीं जाती, जीई जाती है। उसमें उपलब्धियों के स्थान पर सम्भावनाएं रहती हैं, क्योंकि युग ही सम्भावनाओं का है। अनुभूति की प्रामाणिकता में (अर्थात् एक विशेष परिवेश में रमा-बसा मन, व्यक्ति, स्थान और उनसे जुड़ी हुई स्मृतियां, सभी कुछ एक मानवीय अर्थ से सम्पृक्त और सजीव) लेखक की सफलता समझी जाती है। इसी प्रकार अब `चरित्र-प्रधान उपन्यास` नाम की चीज में विश्वास नहीं रह गया। लेखक किसी एक विशिष्ट पात्र का निर्माण कर उसी का चित्रण करने में अपने धर्म का निर्वाह करता था। बिना पात्रों के तो आज भी उपन्यास नहीं लिखा जा सकता। किन्तु अब उपन्यास में चरित्र प्रधान न होकर परिवेश प्रधान होता है। पात्र उस परिवेश का अभिन्न अंग होता है, उसे उजागर करता है।"[1]

कथोपकथन :

कथोपकथन या संवाद उपन्यास का महत्त्वपूर्ण अंग है। इसके द्वारा लेखक पात्रों का चरित्र-चित्रण और कथा वस्तु का विकास करता है। प्रेमचंद युग तक के उपन्यासों के कथोपकथन या संवादों की भाषा सूक्ष्म न होकर अधिक स्थूल थी। उसमें प्राय: पात्रों के मनोभावों और चरित्र को मनोविश्लेषणात्मक पद्धति से उद्घाटित करने की पूर्ण

1- दे० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय-द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास-पृ० 89

सदा मता न आ पाई थी । प्रेमचंद के बाद ही स्थूल और व्याख्यापरक शैली का स्थान तथोक्त विश्लेषणात्मक शैली ने ग्रहण कर लिया । यह शैली पात्रों के अवचेतन मन को प्रकाशित करने में पर्याप्त सहायक सिद्ध हुई । इस शैली का सूत्रपात हिन्दी उपन्यासों में जैनेन्द्र, इलाचंद जोशी और अज्ञेय प्रभृति साहित्यकारों द्वारा हुआ है। इन्होंने पात्रों के मनोविश्लेषण के लिए स्वप्न-चित्रों, संकेतों व प्रतीकों की योजना के द्वारा भाषा को व्यंजनात्मकता, सशक्तता, गम्भीरता व सहजता प्रदान की । आत्म विश्लेषणपरक भाषा की दृष्टि से डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' द्रष्टव्य है। पात्रानुकूल भाषा को व्यक्त करने के लिए पात्रों की मातृभाषा, कैसे आंचलिक भाषा व शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। इस रूप में 'उदयशंकर भट्ट के 'सागर, लहरें और मनुष्य' की रचना, तथा धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता' की भाषा को देखा जा सकता है। आधुनिक उपन्यासों में कहीं-कहीं तो कथोपकथन नहीं के बराबर है। इस न्यूनता को दूर करने के लिए उपन्यासों में डायरी, पत्र आदि का प्रयोग किया गया है। उत्तम पुरुष शैली में लिखे गये उपन्यास इसी प्रकार के हैं। धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवा घोड़ा' इसी प्रकार के उपन्यासों का प्रतिनिधित्व करता है।

देशकाल और वातावरण :

कथा-साहित्य में देशकाल व वातावरण का वही स्थान है जो हमारे शरीर में रक्त व मांस का होता है। प्रत्येक काल की स्थितियां प्राय: अपने युगीन वातावरण के गर्भ से ही प्रसूत होती हैं। इसके द्वारा ही तद्कालगत वस्तु, घटना वा पात्रों की स्वाभाविकता का पता चल सकता है। डा० गुलाबराय के विचार से- 'कथानक के पात्र भी वास्तविक पात्र की भांति देश-काल के बन्धन में रहते हैं। यदि वे भगवान की भांति देश-काल के बन्धनों से परे हों तो वे भी हम लोगों के लिए रहस्य बन जायेंगे। इसलिए देशकाल का वर्णन आवश्यक हो जाता है।"[1] प्रेमचंद युग तक के सामाजिक,

---

1- डा० गुलाबराय -

ऐतिहासिक आदि अनेक उपन्यासों में तथाकथित देश-काल के समस्त बाहरी वातावरण को चित्रित किया गया है। किन्तु स्वातंत्र्योत्तर युग के उपन्यासों की वस्तु अधिकतर मानसिक भावों के सूक्ष्म तंतुओं से निर्मित होने के कारण कथानक, पात्र, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन आदि तत्वों की भांति देश -काल और वातावरण को भी अधिक महत्व नहीं दिया गया। बाहरी वातावरण का स्थान मन के आन्तरिक क्रिया-व्यापारों पर आधारित वातावरण ने ले लिया है। तात्पर्य यह है कि उपन्यास में वातावरण ह्रासोन्मुखी हो रहा है, यद्यपि उसकी सर्वथा उपेक्षा नहीं की गई। इस दृष्टि से जैनेन्द्र का 'सुनीता' और इलाचंद जोशी का 'मुक्ति पथ' उपन्यास देखे जा सकते हैं। उषा प्रियम्बदा, कमलेश्वर, आदि के उपन्यासों का वातावरण भी ह्रासात्मक है।

इस प्रकार आज के उपन्यासों में वातावरण का महत्व कम नहीं हुआ, किन्तु वातावरण प्रधान उपन्यासों की भी सृष्टि, प्रेमचंद बाद हुई है। अज्ञेय का 'अपने-अपने अजनबी' इसी प्रकार का उपन्यास है। उपेन्द्रनाथ अश्क तो देश-काल व वातावरण के सिद्धहस्त चितेरे हैं।

शैली और उद्देश्य :

शैली तत्व का साहित्य में वही स्थान है जो स्थान शरीर में आत्मा का होता है। इस तत्व के द्वारा ही लेखक के व्यक्तित्व को परखा जा सकता है। इस दृष्टि से शैली को व्यक्तित्व विशेष का दर्पण कहा जा सकता है। जीवन की गंभीरता, दुरूहता एवं लेखक के आचार-विचार, आदि के अनुरूप उपन्यास की शैली भी विविध रूप धारण कर लेती है। आज के जीवन की अन्तश्चेतना प्रधान मनोवृत्तियों को अभिव्यक्ति प्रदान करने के क्षेत्र में शैली की दृष्टि से विविध प्रयोगाश्रित उपन्यासों की सृष्टि की गई है। स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में निम्नलिखित शैलियों का प्रयोग दृष्टिगत

होता है - यथा- मनोविश्लेषणात्मक शैली[1], नाटकीयात्मक शैली[2], आत्म - कथात्मक शैली[3], प्रतीकात्मक शैली[4], पत्र-डायरी-शैली[5] और कथा- शैली ।[6]

उपर्युक्त शैलियों के अंशत: प्रयोग भी आज के उपन्यासों में दृष्टिगत होते हैं ।

उद्देश्य की दृष्टि से प्रेमचंद तक उपन्यासों का लक्ष्य मनोरंजन उपदेश-नीति, समाज-सुधारवादी आदर्श परक विचारधारा पर आधारित था । किन्तु पाश्चात्य मनो-विज्ञान एवं मनोविश्लेषण प्रधान सिद्धांतों ने साहित्यिक मनीषा को व्यक्ति-जगत की सूक्ष्म भाव -भूमियों का दिग्दर्शन कराया । स्वातंत्र्योपरान्त संक्रान्तिमूलक परिवेश से जूझते-गुजरते हुए व्यक्ति की अन्तर्मुखी चेतना-प्रक्रिया को वैयक्तिक यथार्थ-बोध के धरातल पर देखने की अभिनव दृष्टि प्राप्त हुई । अतएव तथाकथित आधार पर व्यक्ति के मन की मनोवैज्ञानिक खोज करना आज के उपन्यासकारों का प्रमुख लक्ष्य वा उद्देश्य समझा गया । आज के वैज्ञानिक भौतिक युग ने मानव जीवन को अनेक नई सम्भावनाओं एवं संवेदनाओं के मध्य खड़ा कर दिया है । आज का व्यक्ति अपने जीवन के समस्त पदों पर स्वयं को गिरता-टूटता अनुभूत कर रहा है । इसी संदर्भ में आज का व्यक्ति अनिश्चित व सतत् परिवर्तित मूल्यों की राह से गुजर रहा है । फलत: उसके जीवन में एक प्रकार की मूल्यहीनता व शून्यता की स्थिति उत्पन्न हो गई है । इसका प्रभाव आज के उपन्यासकारों की लेखनी से अछूता नहीं रह सका । इन

1- अज्ञेय के उपन्यास इसी कोटि के हैं ।

2- धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवा घोड़ा' आदि ।

3- डा0 हजारीप्रसाद द्विवेदी कृत 'बाण भट्ट की आत्मकथा' ।

4-

5- बेचनशर्मा उग्र का 'चन्द हसीनों के खतूत' व डा0 देवराज का 'अजय की डायरी' ।

6- धर्मवीर भारती (सूरज का सातवा घोडा) हरिशंकर परसाई (रानी नागफनी की कहानी तथा शैलेश मटियानी (मुख-सरोवर के राजहंस) के उपन्यास ।

उपन्यासकारों की कृतियों में प्रेमचंद युगीन उपन्यासकारों की भांति किसी निश्चित उद्देश्य की स्थापना करने की चेष्टा का प्राय: अभाव ही है। जैनेन्द्र, इलाचंद जोशी, अज्ञेय आदि के उपन्यास तथाकथित तथ्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्ति देना जिन उपन्यासकारों का प्रमुख उद्देश्य रहा है, उनमें फणीश्वर-नाथ 'रेणु' एवं नागार्जुन के आंचलिक उपन्यास देखे जा सकते हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों के द्वारा भी समकालीन परिवेश को चित्रित करने का प्रयास इसी तथ्य की ओर संकेत करता है। जीवन की कोई एक समस्या, अथवा तत्सम्बंधी कोई एक दृष्टिकोण को चित्रित करने के उद्देश्य से भी प्रेरित होकर आज उपन्यास लिखे जा रहे हैं। 'रेणु' का 'जुलूस', उषा प्रियम्वदा का 'पचपन खंभे, लाल दीवारें' तथा कृष्णा सोबती का 'मित्रों मरजानी' आदि इसी कोटि के उपन्यास हैं।

(2) कहानी- स्वातंत्र्योत्तर कहानी- साहित्य का विकास :

भारत -पाकिस्तान का विभाजन, बापू की हत्या, साम्प्रदायिक दंगे, सतत होनेवाले बाहरी आक्रमणों, शरणार्थियों की रक्षा, दुर्भिक्षों व अकालों के साथ ही महायुद्धों की विभीषिकाओं से उत्पन्न युद्धीय आशंकाओं की ज्वालाओं ने जीवन में हताशा, निराशा, टूटन, बिखराव, अलगाव एवं अनास्थादिविषाक्त-चक्रों से मानवता की भावना को चूर-चूर कर दिया था। सन् 1952 ई० का वर्ष भी भारतवर्ष के ऐतिहासिक परिवर्तन की दृष्टि से बड़े महत्व का वर्ष है। इसी वर्ष सर्वप्रथम आम चुनाव हुआ। फलत: संवैधानिक अधिकारों के द्वारा वैयक्तिक स्वातंत्र्य की घोषणा की गई। इसी समय हिन्दी कथाकारों की एक नईपीढ़ी जन्म ले रही थी। इस नई पीढ़ी के साहित्यकार वैज्ञानिक भौतिक सभ्यता से उत्पन्न संक्रामित मूल्यों से गुजरते हुए नये भाव-बोधों व नई संवेदनाओं को अनुभूत करने लगे थे। साथ ही तथाकथित जीवन के नये-बोधों व जटिलताओं को नये शिल्प द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान करनेवाले पाश्चात्य साहित्यकारों के प्रभाव ने इन्हें नई जीवन दृष्टि एवं नई अभिव्यक्ति दी।

यह युग अनेक प्रकार के नये विचारों के संगम का एक वह युग सिद्ध हुआ जहां से अन्तर्राष्ट्रीय अथवा विश्व जनीन समस्याओं को अपने समकालीन परिवेश की अत्यधिक निकटता से देखा जा सकता है। नई पीढ़ी के साहित्यकारों के द्वारा 'राष्ट्रीयता के स्थान में अन्तर्राष्ट्रीयता और गांधीवाद के स्थान में साम्यवादी का एक ओर विकास हो रहा था तो दूसरी ओर मनोविज्ञान की जगह मनोविश्लेषण, स्वप्न-सिद्धान्त और यौनवाद के ग्रहण की प्रवृति बढ़ती जा रही थी। इसका अर्थ यह नहीं कि राष्ट्रीयता अथवा गांधीवाद या मनोविज्ञान की घोर उपेक्षा हो रही थी, वरन् यही है कि ये सभी तत्व एक साथ जीवित तो थे, परन्तु आकर्षण मार्क्सीय जीवन-दृष्टि दर्शन, मनोविश्लेषण और यौनवाद की ओर विशेष था।"[1]

उपर्युक्त प्रवृत्तियों का आरंभ कहानी के विकास युग में ही हो गया था-किन्तु उसका प्रौढ़ रूप स्वतंत्रता के बाद ही दृष्टिगत होता है। यद्यपि स्वतंत्रता पश्चात् के कहानीकारों ने प्रेमचंद की सामाजिक यथार्थ एवं बाबू जयशंकर प्रसाद की व्यक्ति-यथार्थपरक परम्परा का अनुगमन करते हुए कहानी को नये संदर्भों से जोड़ने का प्रयत्न किया। यही कारण है कि उक्त दोनों परम्पराओं से जुड़कर भी नये कथाकारों कीजमीन प्रेमचंद, प्रसाद की जमीन से कुछ विलगता स्थापित कर लेती है। इनमें प्राय: शुद्ध भारतीय परिवेश एवं तद्सम्बंधी अनेकोन्मुखी समस्याओं का वैसा स्वर नहीं है जैसा प्रेमचंद-प्रसाद की जमीन से उत्पन्न शुद्ध भारतीयता का स्वर देखने को मिलता है। इन नये कहानीकारों का आदर्श कामू, सार्त्र, काफ्का आदि की युद्धोत्तर पीड़ा, संत्रास, कुण्ठा और सेक्स की मान्यताओं पर आधारित है। यही कारण है कि इनकी कहानियों में जो अन्तर्मुखी द्वंद्वपरक परिवेश उभर कर आया है वह विशुद्ध भारतीय व्यक्ति और समाज की रोजमर्रा की समस्याओं से उतना अधिक जुड़ा हुआ नहीं है, जितना कि विदेशी सभ्यता से उत्पन्न

1- प्रकाश दीक्षित-'हिन्दी-कहानी'- पृ0 97

~~विदेशी सभ्यता~~ से उत्पन्न नव संदर्भों से । यही कारण है कि नई कहानियों में उभर आनेवाली स्वच्छंद व रोमैंटिक प्रवृत्तियों, सेक्सी दृश्यों, नंगे-भूखों के चित्रणों, टूटते हुए वैयक्तिक सम्बंधों एवं तद्जनित नवीन भाव-बोध तो हैं किन्तु इन पर आधारित कहानियां भारतीय जीवन- के दृष्टिकोण से अधिक न जुड़कर पाश्चात्य समाज व व्यक्ति से जुड़ी हुई ज्ञात होती हैं। इसका यह मतलब नहीं कि ये कहानियां भारतीय मिट्टी की उपज नहीं है, यह तो है ही, किन्तु उसकी गंध को आयातित नव-संदर्भों में अभिव्यक्ति प्रदान होने के कारण इन कहानियों का स्तर अपनी पूर्ववर्ती कहानी-परम्परा से ~~प्र~~ पृथकता स्थापित कर ~~ल~~ लेता है। नये कहानीकार भारती, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर आदि ऐसे ही कथाकार हैं जिनकी कहानियों के पात्रों की संवेदना पीड़ा और कुण्ठाओं के अध्ययन से तथाकथित तथ्य की पुष्टि की जा सकती है। अवश्य ही 'रेणु' शिवप्रसाद सिंह, अमृतराय, अमरकान्त, भैरवप्रसाद गुप्त, मार्कण्डेय, भीष्म साहनी जैसे कुछ नये कहानीकारों ने प्रेमचंदीय जमीन की प्रतिष्ठता करने का प्रयत्न किया है। इनकी रचनाओं में अधिकांश सामाजिक चेतना का स्वर सुनाई देता है। इसी प्रकार 'उषा प्रियम्वदा, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, निर्मल वर्मा, रमेश बख्शी, कृष्ण बलदेव वैद, रामकुमार, श्रीकांत वर्मा आदि की कहानियों में व्यष्टिचिंतन का स्वर ही अधिक उभरा है जो प्रसाद, जैनेन्द्र, अज्ञेय की दिशा का सूचक है।"[1]

~~ए~~ ऊपर निर्दिष्ट समष्टिमूलक एवं व्यष्टिमूलक कहानीकारों की चेतना कभी-कभी परस्पर इतनी घुली मिली ~~हुई~~ हुई दृष्टिगत होती है कि जिससे उन्हें एक अलग और स्पष्ट बिन्दु पर देख पाना बड़ा कठिन हो जाता है। डा० इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में तथाकथित मत की पुष्टि की जा सकती है - 'आज की हिन्दी कहानी में समष्टि चिन्तन एवम् व्यष्ठि-चिन्तन का रूप इतना स्पष्ट एवं स्थूल नहीं जितना इससे

1- सं० डा० हरवंशलाल शर्मा- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास (चतुर्दश भाग) पृ० 264

पहले की कहानी में उपलब्ध होता है। इन दो बड़े पेड़ों की चार शाखाएं इतनी उप-शाखाओं अथवा टहनियों में विकास पाकर एक दूसरे में इतनी उलझ चुकी हैं कि कभी-कभी किसी उप शाखा या टहनी को उसकी शाखा से सम्बद्ध करना कठिन हो जाता है।"[1] तथाकथित कठिनाई वा उलझन के मूल में स्वतंत्रता पश्चात् के साहित्यकारों पर पड़नेवाले मार्क्स फ्रायड, व युंग आदि वैचारिक प्रभाव को देखा जा सकता है जो युगानुरूप भी है। यही कारण है कि जहां स्वतंत्रता पूर्व व्यक्ति के माध्यम से समाज का प्रतिबिम्बन किया गया था वहां इसके विपरीत समष्टिमूलक कहानियों में भी समाज के द्वारा 'व्यक्ति' की ही अभिव्यक्ति की गई। अतः उसका रचनात्मक स्तर विविधता के स्वर पर आधारित है। और चूंकि यह युग प्रमुख रूप से उपलब्धियों का युग है, और उसमें भी वह उपलब्धियों से कहीं अधिक सम्भावनाओं का युग है। अस्तु, आज की 'नई कहानी' की संज्ञा से अभिहित कहानी का वर्गीकरण करना बड़ा कठिन कार्य है। स्थूल दृष्टि से व्यष्टिमूलक एवं समष्टिमूलक चेतना के स्तर पर समादृत होनेवाले कहानीकारों का उल्लेख कर दिया गया है। स्वतंत्रता पश्चात् जीवन की जटिल समस्याओं को लेकर कहानी के शिल्प और शैली के क्षेत्र में अनेकोन्मुखी नये नये प्रयोग हुए हैं और होते जा रहे हैं। तात्पर्य यह है कि आज की कहानियों में शैली-वैविध्य को देखा जा सकता है, जिनके आधार पर यहां उनका यथा-स्थान निर्देश कर देना उचित होगा।

आज की नई कहानी प्रमुख रूप से शिल्प-शैली के अभिनव स्तरों पर आधारित है। शैली वैभिन्न्य के प्रभाव स्वरूप उसकी वस्तु या घटना, पात्र, वातावरण, एवं अभिव्यक्ति का स्तर अपने पूर्ववर्ती कहानियों के स्वरूप से अलग हो जाता है। तथोक्त नवीन मोड़ या स्तर के कारण ही आज की कहानी 'नई कहानी', 'सचेत-कहानी', अकहानी' आदि नामों से अभिहित की जा रही है।

1- इन्द्रनाथ मदान : 'आलोचना और साहित्य' पृ० 145

कथानक : कथ्य एवं शिल्पगत विशेषताएं :

बौद्धिक व मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा व्यक्तिमुखी चेतना ग्रह के सर्वाधिक प्रभाव के कारण स्वातंत्र्योत्तर कहानियों का कथानक ह्रासोन्मुख होता गया है। उसमें ठोस और सुसम्बद्ध कथानक न होकर असम्बद्ध और क्रमहीन कथा-सूत्रों का विकास हुआ है। ऊपर निर्दिष्ट ह्रासमूलक व असंगत कथा-सूत्रोंवाली कहानियों के भाव-सम्प्रेषण के लिए सांकेतिक व प्रतीकात्मक विधानों तथा नाटकीय शैलियों का प्रचुर प्रयोग किया गया है। प्रतीकात्मक कहानियों के रूप में द्रष्टव्य हैं कुछ उदाहरण यथा- धर्मवीर भारती की 'सावित्री नम्बर दो', मोहन राकेश की 'जख्म', नरेश मेहता की 'निशाजी' कमलेश्वर की 'मांस का दरिया, उषा प्रियंवदा की 'मछलियां', मन्नू भण्डारी की 'अभिनेता' कहानी' इसी प्रकार संकेत शैली कथा-सूत्रों के प्रयोग की दृष्टि से अमरकान्त की (जिंदगी और जोंक', मोहन राकेश की 'बस स्टैंड की एक रात', कमलेश्वर की 'एक रुकी हुई जिन्दगी', तथा धर्मवीर भारती की 'आधी रात : रेल एक सीटी' आदि कहानियां उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार विचारोत्तेजक प्रलाप (रैम्बलिंग) या चिन्तनशील सूत्रों को लेकर भी कथानक-ह्रास की प्रकृति दृष्टिगत होती है यथा- सुरेश सिंह की 'उदासी के टुकड़े', भारती की 'सावित्री नम्बर दो' और नरेश मेहता की 'अनबीता व्यतीत'।

पात्र- योजना :

पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी अनेक प्रकार की नवीन प्रणालियां दृष्टिगत होती है। आज की कहानियों में मानसिक द्वन्द्व एवं आत्मविश्लेषण परक स्थितियों की जटिलता को लेकर पात्रों के मानसिक व्यापारों की अति नग्न यथार्थपरक अभिव्यक्ति की गई है। अब चरित्र कहानीकार के भाव वा विचार-बोध की अभिव्यक्ति का माध्यम न होकर आधुनिक संवेदनाओं का व्यंजक बनता जा रहा है। प्रायः आज की मानव-

संवेदनाएं खण्डित व्यक्तित्व वाले लघु मानव की बोधक हैं। आज तो प्रेमचंद-प्रसाद की पात्रीय धारा से विपरीत रास्ते के एक पत्थर की भांति सामान्य से सामान्य और आदर्शहीन व्यक्ति भी पात्र कहलाने का अधिकार प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार के पात्रों द्वारा मनोवैज्ञानिक स्तर पर वर्तमानकालीन मानव के भीतरी द्वन्द्वों को उजागर किया गया है। इसके अधिकांश पात्र प्रतीकात्मक हैं, इस दृष्टि से यह एक नया प्रयोग है। शिवप्रसाद की कहानी 'कर्मनाशा की हार', के भैरों पांडे, राजेन्द्र यादव की 'चीफ की दावत' की मां, नरेश मेहता की 'एक समर्पित महिला', निर्मल वर्मा की 'लवर्स' आदि कहानियों के पात्र इसी प्रकार के हैं। नायकहीन शैली के आधार पर भी ऐसी कहानियों की रचना की गई है कि जिसमें कोई एक पात्र उसका नायक न होकर सारा समाज ही नायक होता है। यह भी एक नया प्रयोग है। 'शेर नर हो तो ऐसा हो'[1] तथा 'दिल्ली में एक मौत'[2] आदि ऐसी ही कहानियां हैं।

भाषा :

नव प्रयोग वैशिष्ट्य के कारण इन कहानियों की भाषा सूक्ष्म-भावों की अभिव्यंजना का सशक्त माध्यम सिद्ध हुई है। आज की कहानियों में प्रयुक्त संकेत शैली, प्रतीक शैली, चित्रादि शैली इसका प्रमाण है। 'हिन्दी-कहानी ने इस काल में शैली, भाषा, यथार्थ अभिव्यक्ति और व्यंजना-शक्ति या सांकेतिकता चारों ही दृष्टियों से विकास किया है।'[3] आधुनिक कहानियों में प्रथम पुरुष वाची शैली के आधार पर आत्म चरित्रात्मक, पत्रात्मक, डायरी आत्मक शैली प्रधान कहानियां भी लिखी गई हैं। इसी प्रकार द्विकथात्मक अथवा संश्लिष्ट भाषा-शैली के आधार पर भी कहानियां लिखी जा रही हैं। डा0 शिवप्रसाद सिंह की 'बरगद का पेड' की कहानी इसका

1- ले0 भारतभूषण अग्रवाल- ज्ञानोदय, जनवरी, 1955।

2- कमलेश्वर - 'नई कहानियां' मई 1962।

3- डा0 रामगोपाल सिंह चौहान - 'आधुनिक हिन्दी साहित्य (1947-1962) पृ0 286

अच्छा उदाहरण है। आंचलिक शैली प्रधान नई कहानियों में ग्राम्य-भाषा, शब्दों, मुहावरों आदि का प्रयोग हुआ है। हिन्दी कहानीकारों में फणीश्वरनाथ 'रेणु', श्री शिवप्रसाद सिंह व भैरवप्रसाद गुप्त, आदि की कहानियां उल्लेखनीय हैं।

उद्देश्य :

आज की कहानी प्राय: जीवन की विश्रृंखलता, असम्बद्धता व व्यक्तिहीनता पर आधारित होने के कारण वह किसी पूर्व निश्चित उद्देश्य या आदर्श के लक्ष्य को लेकर नहीं चलती वरन् नये भाव-बोध एवं संवेदनाओं के यथार्थपरक चित्रण द्वारा पाठकों के हृदय पर तदगत् प्रभाव को उत्पन्न करना ही अपना अभीष्ट समझती है। तात्पर्य यह है कि आज के व्यक्ति की लक्ष्यहीनता, दिशाशून्यता तथा अस्तित्वहीनता बोधक स्थितियों को सार्थक व सटीक अभिव्यक्ति देना इन कहानियों का प्रमुख उद्देश्य है।

ऊपर विवेचित तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी ने वस्तु और शिल्प के क्षेत्र में नये प्रयोगों को आत्मसात् किया है। जीवन के नये दृष्टिकोणों पर आधारित होने के कारण, उसने परम्परा-विच्छेदित नये मानदण्डों की स्थापना का प्रयास किया है। यही उसकी विशेष उपलब्धि है। इस दृष्टि से डा० परमानन्द श्रीवास्तव जी के शब्दों में कहा जा सकता है - 'आधुनिक कहानी में कथानक, चरित्र, कौतूहल आदि के रूढ़ नियमों को तोड़कर जिस अधिक ऋजु एवं सूक्ष्म शिल्प का आविष्कार किया है उसके द्वारा आधुनिक कहानीकार युग की संश्लिष्ट जटिलता और उसके प्रति अपनी अनुभूति प्रक्रिया को अपेक्षित तीव्रता के साथ व्यक्त कर सका है।'[1]

1- डा० परमानन्द श्रीवास्तव - 'हिन्दी कहानी की रचना' - प्रक्रिया- पृ० 202।

(8) नाटक- हिन्दी नाटक तथा वस्तु और शिल्प एवं रंगमंचगत नये आयाम, निष्कर्ष :-

प्रसाद युग तक आते-आते हिन्दी नाट्य-साहित्य ने अपने विकास का एक नवीन आयाम ग्रहण कर लिया था। प्रसाद युगीन नाटककारों ने अपने नाटकों में पाश्चात्य नाट्य-रूढ़ियों के साथ ही स्वच्छंदता एवं यथार्थतावादी प्रवृत्तियों के समन्वय का प्रयास कर दिया था। स्वयं प्रसाद जी ने अपने नाटकों को पूर्व-पश्चिम नाट्य-शिल्पों की समन्वय-साध्य कलात्मक अभिव्यक्ति व रूप प्रदान किया है। इस युग के नाटकों में अतीतोन्मुखी आस्था, भावुक व्यक्तित्व, काव्यात्मकता तथा दार्शनिकता समन्वित दृष्टिकोण अपने प्रचुर रूप में उभर उठा था। प्रसाद की परम्परा के विपरीत श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र जी ने नाट्य-साहित्य में काव्यात्मकता, भावुकता तथा आदर्शवादिता के विरुद्ध व्यक्तिवादी यथार्थपरक चेतना के स्तर पर बुद्धिवाद[1] की प्रतिष्ठा करने का प्रयास किया। तथाकथित बौद्धिक व व्यक्तिपरक चेतनाग्रह का स्वर हिन्दी नाटकों को प्रसाद के स्तर से अलग कर देता है। 'जहां पारसी नाटक और रंगमंच तथा प्रसाद का नाटक और रंगमंच शेक्सपियर और विक्टोरियन नाटक परंपरा से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष ढंग से जुड़ा है, वहां इन्होंने (लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविंददास और हरिकृष्ण -प्रेमी) इन दोनों की प्रतिक्रिया में अपने 'नाट्य' का सम्बंध उससे आगे बढ़कर इब्सन से जोड़ा'[2] स्वतंत्रता पूर्व प्रतिष्ठित तथोक्त नाट्यकारों में श्री मिश्र जी ने 'जीवन के यथार्थ पक्ष' को, श्री 'प्रेमी' ने 'राष्ट्रीय पक्ष' को तथा श्री सेठ ने 'सांस्कृतिक पक्ष' को प्रमुख अभिव्यक्ति दी है। इसी प्रकार इन नाट्यकारों के अतिरिक्त स्वतंत्रता पश्चात् के नये नाट्यकारों ने सांस्कृतिक-ऐतिहासिक, राष्ट्रीय-ऐतिहासिक, पौराणिक एवं सामाजिक-राजनीतिक सम्बन्धी नाटकों की सृष्टि की है। इनमें सामयिक समस्यामूलक स्वर को अभिव्यक्ति मिली है, जो आधुनिक नाटक की दृष्टि

1- 'सन्यासी', 'राक्षस का मंदिर', आदि।

2- हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास (एकादश भाग) पृ0 337

से यह एक नया प्रयोगगत मोड़ है। राष्ट्रीय-ऐतिहासिकता प्रधान नाटक की दृष्टि से हरिकृष्ण प्रेमी के 'रक्षा-बंधन', 'शिवा-साधना', 'प्रतिशोध', उदयशंकर भट्ट के 'दाहर', या 'सिंध पतन', 'शिवा-विजय' और विष्णु प्रभाकर माचवे का 'समाधि', जगदीश चंद्र माथुर का 'कोणार्क', सामाजिक-राजनीतिक दृष्टि से सेठ गोविन्ददास का 'गरीबी-अमीरी', गोविन्द वल्लभ पंत का 'अंगूर की बेटी' तथा सांस्कृतिक ऐतिहासिकता की दृष्टि से मिश्र जी के 'वत्सराज', 'सिंदूर की होली' आदि नाटक उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में सामयिक समस्याओं को मनोवैज्ञानिक ढंग से निरूपित किया गया है।

द्वितीय महायुद्ध के बाद का समय नवीन बोधों व संवेदनाओं का युग है। अन्य साहित्यिक विधाओं की भांति नाट्य-साहित्य भी द्वितीय महायुद्ध के बाद के परिवर्तित राष्ट्रीय, सामाजिक, आर्थिक, आदि परिवेश से जहां एक ओर प्रभावित हुआ है वहां ही दूसरी ओर उसने टेनेसी विलियम्स, ब्रेख्ट, जान आस्बर्न, सार्त्र, कामू, आर्थर मिलर आदि पाश्चात्य नाटककारों से भी प्रेरणा ग्रहण की है। अतः नये नाट्यकारों ने अपने युग के अनुरूप वर्ण्य-विषयों तथा शिल्प-विधानों के क्षेत्र में विविधता को वाणी प्रदान करने की चेष्टा की है। इन नाटककारों में मानव जीवन की जटिल एवं संश्लिष्ट संवेदनाओं को सशक्त अभिव्यक्ति देने के लिए रंगमंच को पूर्णतः विकसित करने का भरसक प्रयास भी दृष्टिगत होता है। इसके पूर्व के अधिकांश नाटक पठनीय थे, उनमें रंगमंचीय एवं अभिनेय तत्वों का अभाव रहता था। तथाकथित रंगमंचीय विकास के परिणामस्वरूप ही आज का नाटक सामयिक तनावपूर्ण मानव जीवन की समस्याओं को सजीव व मार्मिक अभिव्यक्ति दे सका है। इसी तथ्य की ओर दृष्टिपात करते हुए नये नाटक के सम्बंध में श्री कुमार विमल के विचार ध्यातव्य हैं - 'नाटक अपने युग का "बैरोमीटर" कहा जाता है। अपनी युग-चेतना का संवाहक बनकर नाटक जीवित रहता है और किसी भी युग में साहित्य की शक्तिशाली विधा के रूप में स्वीकृत होता है।'[1]

1- कुमार विमल - 'अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य' - पृ0 105

स्वतंत्रता पश्चात् के नये नाटककारों ने व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और मानवता को लेकर सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक तथा पौराणिक नाटकों की सृष्टि की है। ऐतिहासिक, पौराणिक नाटकों में प्राचीन कथा-सूत्रों के द्वारा आधुनिक जीवन-सन्दर्भों की बौद्धिक, तार्किक व यथार्थपरक व्याख्या की गई है। "पौराणिक कथ्य के फलक पर उन्होंने (नाट्यकारों ने) आज के मानव का जीवन देखा है। इसीलिए पौराणिक कथ्य के देव पात्र, आज के समाज के महान व्यक्ति का व्यक्तित्व ग्रहण करते हैं, और खल पात्र भी, आज की जीवन-दृष्टि के परिप्रेक्ष्य में सहानुभूतिपरक व्यक्तित्व पा जाते हैं। वे आज के मानव के सामने कष्टों से जूझते तथा उनका समाधान करते रहते हैं। उनकी कमजोरियों पर आदर्शवाद की कलई नहीं चढ़ाई जाती, वरन् वे कमजोरियाँ बाहर आकर देव-पात्रों को मानवीय व्यक्तित्व देने में सहायक सिद्ध होती हैं।"[1] पृथ्वीनाथ शर्मा कृत 'उर्मिला', जगदीशचन्द्र माथुर कृत 'पहला राजा' तथा उदयशंकर भट्ट कृत 'मत्स्यगंधा, आदिम युग, सागर विजय आदि नाटकों का कथानक तथाकथित तथ्य की पुष्टि करता है। ऐतिहासिक नाटकों में श्री माथुर का 'कोणार्क', धर्मवीर भारती का 'अंधायुग', मोहन राकेश का 'अषाढ़ का एक दिन, व 'लहरों के राजहंस' आदि का कथानक इसी प्रकार ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित है किन्तु उसके द्वारा आधुनिक जीवन की संवेदनाओं को उजागर करने का प्रयास किया गया है। इसी प्रकार सामाजिक चेतना व समस्याओं को लेकर अनेक कलापूर्ण नाटक लिखे गये हैं। मोहन राकेश का 'आधे अधूरे', मन्नू भण्डारी का (बिना दीवारों के घर) तथा लक्ष्मीनारायणलाल का 'अंधा कुआँ', विनोद रस्तोगी का 'आजादी के बाद' शम्भूनाथ सिंह का 'धरती और आकाश', नरेश मेहता का 'सुबह के घण्टे' आदि नाटक इसी प्रकार के श्रेष्ठ नाटक हैं।

1- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय- 'द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास- पृ० 282

हिन्दी नाटक की तरह एकांकी का भी विकास हुआ है। इसकी परम्परा भारतीय है किंतु इसका विकास पाश्चात्य पद्धतियों पर आधारित है। 'रंग-मंच के निर्देश, संक्षिप्त व बौद्धिक संवाद, क्रियात्मक क्षिप्रता, अन्तर्द्वन्द्व, दुखान्तता और प्रभावान्विति। इन विशेषताओं में हिन्दी एकांकी का विकास देखा जा सकता है। एकांकियों में भी वस्तु व शिल्प की दृष्टि से अनेक नये प्रयोग हुए हैं, अत: यह भी नाटक की तरह विविधतामयी है। ऐतिहासिक, सामाजिक, भावात्मक व समस्यामूलक प्रयोगों की दृष्टि से डा० रामकुमार वर्मा की एकांकियाँ उल्लेखनीय हैं। समस्यामूलक एकांकियों में मुख्यत: पारिवारिक, मध्यवर्गीय और ग्राम्य-जीवन की समस्याओं को सशक्त अभिव्यक्ति मिली है। पारिवारिक समस्याओं में दो पीढ़ियों के बीच अन्तसंघर्ष, पारिवारिक दायित्वों से विमुखता, और पति-पत्नी के बीच तनावों की स्थितियों को उभारा गया है। मध्यवर्गीय समस्याओं में आर्थिक संकट को लेकर मध्यवर्गीय व्यक्ति की अनेकानेक समस्याओं का चित्रण हुआ है। 'रुपया तुम्हें खा गया'[1], 'पहेली'[2], 'उतरा नशा'[3] आदि एकांकियों में आर्थिक संकट को लेकर बेकारी, भ्रष्टाचार, अनैतिकता आदि प्रश्नों पर प्रकाश डाला गया है। नारी-जीवन की विभिन्न समस्याओं को लेकर भी 'मंडवे का मोर'[4], 'दो किनारे'[5] आदि एकांकियां लिखी गई हैं। ग्राम्य जीवन की समस्याओं को लेकर 'दो पैसे का नमक'[6], 'धरती की महक'[7], 'अंधा-कुंआ'[8], 'मास्टर जी'[9] आदि एकांकियां लिखी गई हैं। इसी प्रकार राजनैतिक समस्याओं पर आधारित एकांकियां हैं-

---

1- भगवतीचरण वर्मा
2- राजेन्द्र रघुवंशी
3- राजीव सक्सेना
4- लक्ष्मीनारायण मिश्र
5- विष्णु प्रभाकर
6- मार्कण्डेय
7- रामावतार चेतन
8- लक्ष्मीनारायण लाल
9- आनन्द प्रकाश जैन

यथा- `कश्मीर का कांटा` (वृंदावनलाल वर्मा), `दृष्टि की खोज` (विष्णु प्रभाकर), आदि इसी प्रकार के एकांकी नाटक हैं। इस प्रकार नाटक की वस्तु-सीमा की पर्याप्त विस्तार और वैविध्य प्राप्त हुआ है। एकांकी नाटक की भांति रेडियो-नाटक और पद्य-नाटकों का भी बहुमुखी विकास स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में हुआ है। उदयशंकर भट्ट का `कालिदास` भगवतीचरण वर्मा का `महाकाल`, सुमित्रानंदन पंत का `शिल्पी`, तथा भारतभूषण अग्रवाल का `मिलन-तीर्थ` : आदि छन्दोबद्ध रूपक हैं। सिद्धनाथ कुमार (`कवि` लौह-देवता) सृष्टि की सांझ) तथा धर्मवीर भारती[1] आदि ने गीति-नाटक तथा काव्य-नाटक की रचना की है।

नव कथा-शिल्प की दृष्टि से आज की एकांकी का कथानक प्राय: एकार्थी हो गया है। जीवन जगत् के किसी एक दृश्य का चरित्रात्मक या घटनात्मक चित्रांकन होने से इसमें कार्य, स्थान अथवा काल में से किसी एक की अन्विति होना आवश्यक माना गया है। आज इनका मिश्र रूप अथवा इन तीनों का अतिक्रमण भी किया जाता है।[2] पात्र की दृष्टि से व्यक्ति के मनोद्वन्द्वों का विश्लेषण प्रधान उद्देश्य बन जाने के कारण प्रमुख नायक के द्वारा वीर या श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति न होकर सामान्य पात्र अथवा जीवन जगत् के किसी एक मार्मिक पक्ष की सृष्टि के द्वारा प्रधान भाव, चरित्र व घटना छवि का अंकन किया जाने लगा है। उपर्युक्त विशेषताएं श्री भुवनेश्वर प्रसाद, रामकुमार वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क[3], उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, जगदीश चंद्र माथुर[4], विष्णु प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, अमृतलाल नागर, सिद्धनाथ कुमार और धर्मवीर भारती[5] प्रभृति एकांकीकारों में देखी जा सकती है।

1- अंधा-युग

2- शंकर देव अवतरे- हिन्दी साहित्य में काव्य के प्रयोग- पृ0 116

3- चरवाहे, सुखी डाल, अंधी गली।

4- `भोर का तारा`, `कबूतर खाना`, `बन्दी`।

5- `नदी प्यासी थी`, `आवाज का निलाम`।

इसी प्रकार स्वातंत्र्योत्तर काल में आकाशवाणी केन्द्रों की संख्या में पर्याप्त अभिवृद्धि होने के फलस्वरूप तथा विभिन्न क्षेत्रों में रंगमंचीय विकास या तद्गत नवीन उपलब्धियों के कारण हिन्दी नाटकों के विषय-वस्तु और रूप-विन्यास दोनों ही क्षेत्रों में अनेक विध मोड़ एवं विस्तार की सम्भावनाएं दृष्टिगत होने लगी है। इस दृष्टि से एकांकी नाटक, रेडियो नाटक, पद्य-नाटक, आदि लघु-नाटक रूपों को देखा जा सकता है। स्वाधीनताकालीन नाटककारों ने नाटक के स्थाप्य के पुराने मानदण्डों व सिद्धान्तों की उपेक्षा की है। अत: अत्याधुनिक नाटकों का कथानक ह्रासमूलक एवं द्वन्द्वात्मक हो गया है। इन नाटककारों ने पंच कार्य अवस्थाओं, संधियों-सन्ध्यंगों एवं त्रि-अन्विति आदि के पूर्ण निर्वाह की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया है। पात्र सम्बंधी दृष्टिकोण में भी परिवर्तन दृष्टिगत होता है। एकांकी के पात्रीय सन्दर्भ में इस दृष्टि से विचार किया जा चुका है। कभी- कभी नायकहीन अथवा अनेक नायकों की सम्भावनाओं के साथ भी अनेक उत्तम कोटि के नये नाटक लिखे गये हैं। एक पात्रीय प्रयोग पर आधारित नाटकों की भी सृष्टि हुई है। एक पात्र को सूत्रधार के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। वह अंशत: नाटक की आलोचना करता है। उसके द्वारा उठाये गये भाव-प्रश्न नाटक में आद्योपान्त चलते हैं। इस प्रकार के भाव-सूत्र वाहक पात्र को 'नैरेटर' कहा गया है। डा० भारती कृत 'अंधायुग' के दोपहरी व कथा-गायक इसी प्रकार के पात्र हैं जो कथा-स्थितियों पर टीकाएं प्रस्तुत करते हैं। कभी-कभी एक ही पात्र के द्वारा अनेक पात्रों की भूमिका को प्रस्तुत करनेवाले नाटकों की भी सृष्टि हुई है, जो एक नवीन प्रयोग है। इन नाटकों में वस्तु-विधान को खण्डित करनेवाले अनावश्यक पात्रों की भरमार नहीं है। नाटक में पड़नेवाली कठिनाइयों और बाधाओं को दूर करने के लिए आज के नाटकों में रंग-कौशल को लेकर अनेक रंगोपयोगी प्रयोग किये गये हैं। नाटकीय वस्तुओं का परिचय एवं अर्थ-बोध की तीव्रता कराने के लिए 'दृश्य-बन्धों' की योजना इसका अच्छा उदाहरण है। इसके द्वारा अभीष्ट प्रभाव की सृष्टि की जाती है। इस दृष्टि से प्रसादकालीन नाटककारों का अधिक ध्यान रंग-कौशल व दृश्य-बंधों की नियोजना की ओर नहीं गया था। किन्तु आज के नाटककार रंग-कौशल की नियोजना के द्वारा अपने नाटकों को अभिनीत रूप देने के क्षेत्र में अत्यन्त प्रयत्नशील हैं।

लम्बे अनाट्योचित स्वगत कथन जो संस्कृत नाटकों की परम्परा से आकर प्रसाद के नाटकों में दृष्टिगत होते हैं, आज उनकी कमी दिखाई देती है। इसके संवाद छोटे और अभिनीत हैं। भाषा की सहजता और सरलता पात्रानुकूल और नाट्योचित है। आज के जीवन की जटिलता को सशक्त वाणी देने के लिए प्रतीकात्मक एवं बिम्ब प्रधान भाषा शैली का भी उपयोग किया गया है। 'कोणार्क', 'लहरों के राजहंस', 'नीली झील', 'करफ्यू', 'मिस्टर अभिमन्यु' आदि नाटकों की भाषा इसी प्रकार की है। नाटकों के शीर्षक भी प्राय: प्रतीकात्म ही है। 'चरवाहे', 'स्ट्राइक', 'आवाज का नीलाम', 'पत्थर में प्राण' आदि नाटकों के शीर्षक इसी प्रकार के प्रतीकात्मक हैं। इसी प्रकार मानसिक क्रिया-व्यापारों की यथार्थपरक अभिव्यक्ति के लिए ध्वनि-संगीतों, स्वप्न-चित्रों फ्लैश बैक पद्धति आदि का प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष :

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आज का नाटक वस्तु और शिल्प की दृष्टि से नवीन प्रयोगों पर आधारित है। उस पर पाश्चात्य प्रभाव सर्वाधिक रूप से दृष्टिगत होता है। अत: तथाकथित नया नाटक अधिक रूप से प्रबुद्ध एवं शिक्षित वर्ग के मनोरंजन का साधन बनता चला है। इसी पाश्चात्य प्रभाव को दृष्टिगत करते हुए नये नाटकों के सम्बंध में डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के विचार द्रष्टव्य हैं - 'हमारे नाटककार पश्चिम के रंगमंच से इतने अभिभूत हैं कि उन्हें अपने देश की प्राचीन रंगशालाओं और लोक-नाट्य-परम्परा के स्वरूप और गठन का कोई ज्ञान नहीं है। जानने की कोशिश भी नहीं की जाती। इसीलिए गतिरोध है, और गतिरोध उस समय तक दूर नहीं होगा, जब तक हिन्दी के सामयिक नाटककार अपने देश की रंग-परम्परा और पश्चिमी रंग-परम्परा का समुचित समन्वय स्थापित कर नवीन नाट्य-रूपों और कला-रूढ़ियों को जन्म नहीं देंगे।"[1]

1- लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय-द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास-पृ० 301

(4) निबंध-साहित्य-विकास-भूमि(छायावाद युग तथा उत्तरकालीन हिन्दी निबन्ध :

छायावाद युगीन निबंध विशेष रूप से भावात्मक-दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति है। इस युग के प्रमुख निबंधकार हैं पं० माखनलाल चतुर्वेदी, जयशंकर प्रसाद, निराला, रामकृष्णदास, वियोगी हरि, शान्तिप्रिय द्विवेदी, आचार्य शुक्ल जी, आदि। भावात्मक निबंधों का पूर्ण विकास 'प्रसाद' वियोगी हरि, निराला व माखनलाल चतुर्वेदी जी के निबंधों में दृष्टिगत होता है। इसी प्रकार विचारात्मक निबंधों का पूर्ण विकास आचार्य शुक्ल जी के निबंधों में दिखाई देता है। आचार्य शुक्ल जी ने अपने निबंधों में बुद्धिपक्ष बुद्धिपक्ष के साथ हृदय पक्ष का भी समन्वय किया है। भावप्रधान निबंधों की शैली में अनेक विषयों पर आधारित सुंदर गद्य-काव्यात्मक निबंधों की सृष्टि की गई है। सरदार पूर्णसिंह, प्रसाद, निराला आदि के निबंध इसी प्रकार के हैं। छायावाद के अन्य निबंधकार आज भी जीवित हैं और कुछ न कुछ लिख रहे हैं अत: उनका विचार छायावादोत्तर निबंधकारों के संदर्भ में करना अनुचित न होगा। वर्तमान युग में दो प्रकार के निबंधकारों की पीढ़ियाँ चल रही हैं। एक पीढ़ी छायावादी युग से आज तक लिखते आ रही है। दूसरी पीढ़ी नयेलेखकों की है। इनमें विषय और शैली दोनों की नवीनता है। पहली पीढ़ी पीढ़ी के प्रमुख निबंधकार हैं यथा- परशुराम चतुर्वेदी, धीरेन्द्र वर्मा, वासुदेव-शरण अग्रवाल, आदि। इन निबंधकारों ने कला, धर्म, दर्शन, शिक्षा, इतिहास, व संस्कृति आदि पर गम्भीर विचारपूर्ण निबंध लिखे हैं। इन निबंधकारों में विचार-तत्व और भाव तत्व दोनों का मणिकांचन योग हुआ है। भाषा प्रतीकात्मक एवं लालित्यपूर्ण है। इस दृष्टि से वासुदेवशरण अग्रवाल के संस्कृति व इतिहास सम्बंधी निबंध द्रष्टव्य हैं।

दूसरी पीढ़ी के निबंधकारों में कि जो स्वतंत्रता पूर्व प्रतिष्ठित हैं उनमें

इलाचंद जोशी, यशपाल, जैनेन्द्र, हजारीप्रसाद द्विवेदी, अज्ञेय, रामविलास शर्मा, भगीरथ मिश्र, व नगेन्द्र आदि उल्लेखनीय निबंधकार हैं। इलाचंद जोशी के निबंध[1] चिन्तन व विचार प्रधान निबंध हैं। यशपाल, रामविलास शर्मा, व अमृतराय आदि निबंधकारों ने अपने निबंधों के द्वारा मार्क्सवादी या प्रगतिशील विचारधारा की अभिव्यक्ति की है। इनकी शैली गम्भीर और तीखी है। जैनेन्द्र जी के निबंधों पर गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव देखा जा सकता है। साहित्य का श्रेय और प्रेय, `जड़ की बात`, `पूर्वोदय`, `काम, प्रेम और परिवार` ये और वे`, `समय और हम` आदि इनके इसी प्रकार के निबंध संग्रह हैं। पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी जी के निबंधों की की आधारभूमि भारतीय संस्कृति है। इनके निबंधों में आत्म-व्यंजना का तत्व अधिक है। `अशोक के फूल`, `कल्प-लता`, `विचार और वितर्क` आदि इनके श्रेष्ठ निबंध संग्रह हैं। `अज्ञेय` के अधिकांश निबंध विचार प्रधान हैं। इनमें आत्म-व्यंजक तत्वों की अधिकता दृष्टिगत होती है। `त्रिशंकु`, `आत्मनेपद` आदि इनके श्रेष्ठ निबंध संग्रह हैं।

नयी पीढ़ी के निबंधकार :

स्वतंत्रता पश्चात् नयी पीढ़ी के निबंधकारों ने पाश्चात्य साहित्य के आधुनिक निबंधकारों से प्रेरणा ग्रहण कर हिन्दी में लालित्य प्रधान शैली के निबंधों के द्वारा एक नवीन परम्परा को विकासात्मक मोड़ देने का प्रयत्न किया है। स्वतंत्रता पूर्व लालित्य पूर्ण शैली में भावप्रधान निबंध लिखे जा चुके थे, किन्तु वे

1- दे० `विवेचना`, `विश्लेषण`, `देखा-परखा` आदि।

स्फुट रूप में ही दृष्टिगत होते हैं। उनका इस दिशा में स्वतंत्र विकास स्वतंत्रता-कालीन निबंधकारों द्वारा हुआ है। यह ललित निबंध प्राय: आत्म व्यंजक शैली पर आधारित हैं। हिन्दी के ललित निबंधों के स्वरूप पर दृष्टिपात करते हुए डा० सिद्धनाथ कुमार जी ने उसकी विशेषताओं पर निम्नलिखित रूप से विचार किया है। यथा- हिन्दी के ललित निबंधों के हास्य, चुटकुले, मुहावरे, कहावतें भी विचार-वस्तु(थीम) बन जाती हैं और इस तरह वे एक भावात्मक क्रीड़ा-विलास हो जाते हैं। उनमें काव्य जैसी रमणीयता की लावण्य-छाया झिलमिलाती है और वे सीधे पाठक से वार्तालाप करने लगते हैं। इसलिए वे एक वार्तालेख भी हो जाते हैं। उनमें एकालाप भी खूब मिलता है, इसलिए वे गतिपरक होजाते हैं। वैयक्तिक हो जाते हैं। उनमें कल्पना के हंस दूर-दूर तक अलंकार के आकाश में फड़फड़ाते हैं, इसलिए वे कल्पनामूलक भी हो जाते हैं। उनमें नितांत अनौपचारिकता झलकती है इसलिए वे सहज हो जाते हैं। कभी-कभी उनमें विचारों का दिवास्वप्नपरक मेला लग जाता है, इसलिए वे प्रभावमूलक(इम्प्रेशनिस्टिक) हो जाते हैं। सारांश यह है कि सर्जनात्मक साहित्य की जितनी भी विधियां हो सकती हैं, वे सब ललित विशेषण युक्त निबंध में स्थान पा जाती हैं।[1] ऐसे ललित निबंधों में व्यंग्य प्रधान शैली, विषयों के प्रति रागात्मक दृष्टिकोण, सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि, पाठकों को प्रभावित करनेवाली पूर्ण क्षमता, और नाटकीय कथ्य आदि तत्वों का भी समावेश होता है।[2]

निबंध विधा के नये रूप(विकास और प्रदेय की दृष्टि से :

तथाकथित गद्य साहित्य की ललित शैली प्रधान निबंध विधा का अनेक रूपों

1- दे0 अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य- कुमार विमल, में डा0 सिद्धनाथकुमार का लेख नव्य ललित निबंध-पृ0 146

2- डा0 रामचंद्र तिवारी- हिन्दी का गद्य साहित्य- पृ0 79

में विकास हुआ है। इसके कुछ प्रमुख रूप हैं यथा- रेखा-चित्र एवं संस्मरण-साहित्य, यात्रा-साहित्य, डायरी और रिपोर्ताज साहित्य, इन्टरव्यू-साहित्य, तथा आत्मकथा एवं जीवनी साहित्य, गद्य-गीत और केरीकेचर आदि। उपर्युक्त सभी ललित निबंध के लघु -रूपों का विकास स्वतंत्रता के बाद ही दृष्टिगत होता है।

रेखा-चित्र :

इसमें लेखक किसी पात्र या व्यक्ति की विभिन्न रूप-रेखाओं, मनोभावों तथा उसके जीवन सम्बंधी मार्मिक प्रसंगों को रूपायित करता है। रेखाचित्र, लिखनेवालों में रामवृक्ष बेनीपुरी (माटी की मूरतें, `गेहूं और गुलाब` `बलदेव सिंह) कन्हैयालाल मिश्र `प्रभाकर` (माटी हो गई सोनो,` प्रकाश चंद्र गुप्त (`पिपल`, `खण्डहर`), प्रभाकर माचवे (खरगोश के सिंग`) श्री अमृतराय (`गीली माटी` तथा मार्कण्डेय (`दीप जले शंख बजे), प्रभृति रेखा-चित्रकारों का नाम उल्लेखनीय है।

संस्मरण-साहित्य :

इसमें लेखक किसी घटना स्थल या व्यक्ति से सम्बंधित निजी अनुभूतियों व स्मृतियों को साकार रूप प्रदान करता है। महादेवी वर्मा ने (पथ के साथी) में अपने साहित्यिक पथ के साथी प्रसाद, पंत, निराला आदि साहित्यकारों के साथ की निजी अनुभूतियों को कलात्मक अभिव्यक्ति दी है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी के `लोकमान्य तिलक`, `जब मैं इनसे मिलने गया`, `श्री जैनेन्द्र का विवाह` आदि श्रेष्ठ संस्मरण चित्र हैं। इसी प्रकार अन्य संस्मरण-चित्र लेखकों में कन्हैयालाल मिश्र `प्रभाकर`, `जगदीशचंद्र जैन, आदि साहित्यकारों ने संस्करण साहित्य की अभिवृद्धि की है।

यात्रा-साहित्य :

कलात्मक साहित्यिक प्रयोग यात्रा-साहित्य में भी हुआ है। यात्राओं के वर्णन के द्वारा अपनी अनुभूतियों को कलात्मक रूप दिया गया है। इसमें रेखाचित्र, संस्मरण और कहानी-शिल्प का भी सम्मिश्रण मिलता है। रामवृक्ष बेनी (पैरों में पंख बांधकर) धर्मवीर भारती (ठेले पर हिमालय[1]), अक्षयकुमार जैन(दूसरी दुनिया) अज्ञेय (अरे यायावर याद रहेगा, एक बूंद सहसा उछली) मोहन राकेश(आखिरी चट्टान तक) अमृतराय(सुबह के रंग) प्रभाकर द्विवेदी (पार उतर कहं जइहों) आदि साहित्यकारों ने सरसयात्रा-साहित्य लिखा है।

डायरी साहित्य :

साहित्य की दृष्टि से आत्मकथा और संस्मरण के बीच की वस्तु है। इसमें दैनन्दिन की सुखात्मक और दुखात्मक अनुभूतियों को कलात्मक अभिव्यक्ति मिलती है। इसमें व्यक्तिगत भावों की व्यंजना होती है। साहित्यकार द्वारा लिखी जानेवाली डायरियों की घटनाएं व तिथियां काल्पनिक भी हो सकती हैं। यद्यपि डायरी-साहित्य प्रमाण में कम लिखा गया है तथापि समय समय पर आज की 'कल्पना', 'ज्ञानोदय', 'माध्यम', 'धर्मयुग' आदि पत्रिकाओं में इसे स्थान मिलता जा रहा है। शमशेरबहादुर सिंह, प्रभाकर माचवे, धर्मवीर भारती, अमृतराय, लक्ष्मीकान्त वर्मा, नरेश मेहता, आदि नये साहित्यकारों ने डायरी-साहित्य को स्वतंत्र रूप में लिखने का प्रयास किया है।

1- डा० धर्मवीर भारती ने 'ठेले पर हिमालय' शीर्षक संग्रह में गद्य की प्रायः सभी अधुनातन विधाओं का प्रयोग किया है। आपका कवि सभी गद्य-विधाओं पर छाया है।' डा० रामचंद्र तिवारी-हिन्दी का गद्य साहित्य-पृ० 78

रिपोर्ताज साहित्य :

द्वितीय महायुद्ध के बाद विदेशी साहित्य में इस रूप का प्रयोग हुआ था। जिसकी देखा-देखी, स्वतंत्रता बाद हिन्दी साहित्य में भी इसकी ओर नये लेखकों का आकर्षण बढ़ा। यह एक प्रकार का रिपर्ट-साहित्य है। हिन्दी में कम लिखा गया है। `धर्मयुग` पत्रिका से इसको अधिक प्रेरणा और प्रश्रय प्राप्त हुआ है। आज सभी प्रमुख पत्रिकाओं यथा- ज्ञानोदय, कल्पना, माध्यम , लहर, आदि में सुंदर रिपोर्ताज लिखे जा रहे हैं।

इन्टरव्यू-साहित्य :

इसमें एक लेखक दूसरे लेखक या विशिष्ट व्यक्ति से इन्टरव्यू लेकर अपनी अनुभूतियों को कलात्मक अभिव्यक्ति देता है। स्वतंत्रता बाद इस विधा का मौलिक रूप से विकास हुआ है। `इन्टरव्यू में व्यक्तिगत प्रश्न भी किये जा सकते हैं और सार्वजनिक भी।`[1] हिन्दी में इन्टरव्यू-निबंध रूप का सूत्रपात डा० पद्मसिंह शर्मा ने किया है।[2] `कमलेश`[3], लक्ष्मीचन्द्र जैन[4], शरद देवड़ा[5] आदि नये लेखकों ने सुंदर और सजीव साक्षात्कार प्रस्तुत किये हैं। `हिन्दुस्तान` और `धर्मयुग` जैसी पत्रिकाओं में भी इन्टरव्यू निकलते रहते हैं।

लघुकथा और गद्य गीत :

यह गद्य की नवीन विधा अभी अपने शैशवकाल में है। लघुकथाओं में जीवन के

1- डा० रामगोपाल सिंह चौहान- `आधुनिक हिन्दी साहित्य` - पृ० 329

2- वही- पृ० 329

3- `मैं इनसे मिला`।

4- भगवान महावीर एक इन्टरव्यू।

5- `हिन्दी की चार नवोदित लेखिकाओं से एक रंगमंचीय काल्पनिक इन्टरव्यू`

किसी गूढ़ अन्तर्वर्ती सत्य, संदेश, विचार या अनुभूति को छोटी सी साधारण प्रतीत होनेवाली कहानी के रूप में प्रस्तुत करते हैं। कभी-कभी इन्हें 'बोध-कथा' भी कहा जाता है।"[1] यह लघुकथा एक प्रकार से भावात्मक निबंध का ही प्रकार है। इस दृष्टि से वह गद्य-गीतों के अधिक निकट स्थान पा लेती है। गद्य-गीत छंदों के रूप में इसमें गीत तत्व एवं कहानी के कथातत्व का भी सुंदर समन्वय हुआ है। आधुनिक हिन्दी के प्रमुख और नये लघुकथाकारों में कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (आकाश के तारे धरती के फूल) रावी (मेरे कथा-गुरु का कहना है) जगदीशचन्द्र मिश्र (मोदा की खोज, उड़ते पंख), लक्ष्मीचन्द्र जैन (कागज की किश्तियां) आदि लेखक श्रेष्ठ लघुकथाकार हैं। बोधक एवं भावात्मक तत्व की दृष्टि से श्री धर्मवीर भारती का निबंध संग्रह 'पश्यन्ती' एवं कहानी संग्रह 'चांद और टूटे लोग' की कुछ रचनाएं देखी जा सकती हैं। गद्य-गीतों का प्रारंभ छायावाद युग की भावपरक गद्यात्मक गीति शैली से ही हो गया था जिसका स्वतंत्र विकास छायावादोत्तर युग में दृष्टिगत होता है। अज्ञेय कृत 'चिन्ता', परमेश्वरीलाल गुप्त कृत 'बंदी की कल्पना', आदि सुन्दर गद्य गीत हैं। इसी प्रकार सत्यवती मल्लिक, रामेश्वरी गोयल, भारती शर्मा, विद्याकुमारी भार्गव आदि लेखिकाओं ने भी गद्य गीतों का विकास किया है।

कैरीकेचर :

डा० नगेन्द्र जी द्वारा सम्पादित 'मानविकी पारिभाषिक कोश' में इसको पारिभाषित किया गया है। यथा- 'किसी भी स्वभावगत अथवा शारीरिक विशेषताओं का चित्रकला, साहित्य अथवा नाटक में ऐसा व्यंग्यात्मक अत्युक्तिपूर्ण अथवा विकृत चित्रण जिससे हंसी आए।"[2] इसमें लेखक का तटस्थ दृष्टिकोण अपेक्षित

1- डा० रामचंद्र तिवारी - 'हिन्दी का गद्य साहित्य- पृ० 204

2- डा० नगेन्द्र- 'मानविकी पारिभाषिक कोश- साहित्य -खण्ड-पृ० 35

होना चाहिए अन्यथा 'व्यंग्य -चित्र' अत्युक्तिपूर्ण होकर यथार्थता के सहज भाव-बोध के स्तर से गिर सकता है। उससे अस्वाभाविक एवं हास्यास्पद रूप की अभिव्यक्ति होने लगती है। इसमें हास्य एवं व्यंग्य का रूप अधिक मुखरित होने के कारण यह कार्टून -चित्रों के अधिक निकट का है। अमृतलाल नागर, हरिशंकर परसाई, ब्रजकिशोर नारायण आदि लेखकों ने कैरीकेचर में सफलता प्राप्त की है।

ऊपर विवेचित तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विषयों की विविधता के बढ़ जाने से आज का निबंध साहित्य विषय एवं रूप-विधानों के नवीन आयामों पर अपना स्वतंत्र विकास कर रहा है। आज के निबंध-साहित्य ने व्यष्टिनिष्ठ भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित होकर आत्मव्यंजक एवं लालित्यपूर्ण शैली को जन्म दिया है। इस दृष्टि से इसने निबंध परम्परा के विकास में एक नया मोड़ प्रस्तुत किया है।

(5) आलोचना- छायावादोत्तर हिन्दी आलोचना का विकास (पाश्चात्य प्रभाव तथा विभिन्न आंदोलनों के प्रभाव के परिप्रेक्ष्य में) :

छायावादोत्तर काल में हिन्दी आलोचना का बड़ी तेजी से अनेकोन्मुखी विकास हुआ है। इस काल के अधिकांश साहित्यकारों एवं समालोचकों के वैचारिक स्तर पर समष्टिमूलक चिन्तन को लेकर कार्ल मार्क्स, तथा व्यष्टिमूलक स्वातंत्र्यपरक चिन्तन को लेकर फ्रायड युग, एडलर आदि मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्तों एवं तद्प्रसूत अनेक नई प्रवृत्तियों का प्रभाव पड़ा है। इसके प्रभाव स्वरूप अनेक प्रकार की नई समीक्षात्मक पद्धतियों का जन्म एवं विकास हुआ है। हिन्दी में प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी आलोचना उपर्युक्त मार्क्सवादी समाजशास्त्रीय/वा द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद एवं फ्रायडादि के मनोविज्ञान एवं मनोविश्लेषणपरक सिद्धान्तों पर आधारित है। अत: प्रगतिवादी आलोचना के क्षेत्र में भी वस्तुवाद, प्रकृतिवाद तथा समाजवादी-वस्तुवाद

सम्बंधी प्रवृत्तियाँ उभर कर आई हैं। हिन्दी में प्रगतिवादी समीक्षा वस्तुत: वस्तुवादी दृष्टिकोण पर आधारित होने के कारण उसमें ष जगत् के प्रति आत्मानिष्ठ दृष्टिकोण का अत्याग्रह है। वस्तुवादी साहित्यकार कला को एक सामाजिक पदार्थ मानकर उसके विभिन्न सौंदर्य का विश्लेषण करते हैं। हिन्दी में मार्क्सवादी या प्रगतिवादी आलोचना पर प्रकाश डालनेवाले आलोचकों में श्री शिवदान सिंह चौहान (प्रगतिवाद) श्री रामविलाश शर्मा(प्रगतिशील साहित्य कीसमस्याएं भारतेन्दु युग), प्रकाशचन्द्र गुप्त(हिन्दी साहित्य में जनवादी परम्परा), रांगेय राघव(प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड), नामवरसिंह(छायावाद और आधुनिक साहित्य), तथा धर्मवीर भारती(प्रगतिवाद : एक समीक्षा) आदि लेखक व साहित्यकारों के नाम उल्लेखनीय हैं। रामविलास शर्मा जी ने प्रेमचंद, निराला आदि की कृतियों का मूल्यांकन मार्क्सवादी समीक्षा पद्धति पर किया है यशपाल के अधिकतर प्रगतिवादी सिद्धान्त निबंधाकार हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में जिस फ्रायडवादि के अवचेतनवाद के सिद्धान्तों को लेकर (कि जो मूलत: व्यक्तिनिष्ठ है) जो नई समीक्षा पद्धति का उदय हुआ उसे ही प्रयोगवादी आलोचना से अभिज्ञापित किया गया। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् रचनाशीलता में युगीन नई संवेदनाओं के कारण परिवर्तन की बाढ़ आई। फलत: आलोचना के मानदण्डों और पद्धतियों में भी परिवर्तन आया। "सामयिक आलोचना का जन्म कवि और कलात्मक समग्रता का कलानुभव, समकालीनता-बोध, साधारणी-करण, आधुनिक रसानुभूति, लय, छंद, युग-बोध, आधुनिकता, जीवन-मूल्य, परिवेश, प्रतिमान, सृजन-प्रक्रिया, सम्प्रेषण, प्रतिबद्धता, बौद्धिकता, आत्मान्वेषण, अनुभूति की प्रामाणिकता, कवि की ईमानदारी, श्लीलता-अश्लीलता, सौंदर्य-बोध, आनन्द-तत्व, भाषा-शिल्प, यथार्थ की अभिव्यक्ति, व्यक्ति और समाज, काव्य-रुचि और अभिव्यक्ति के रूप, परम्परा और प्रयोग, वस्तु-तत्व और आत्म-तत्व, कवि की सहृदयता, रागात्मकता, परिवेश, लोक-मंगल का रूप, साहित्यकार और पाठक का सम्बन्ध आदि प्रश्न लेकर हुआ।"[1]

1- डा0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय- द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास- पृ0 302

अत: इससे स्पष्ट है कि इस प्रकार आलोचना के क्षेत्र में अनेक नये दृष्टिकोणों का प्रादुर्भाव हुआ। 1950 के आसपास नव साहित्यिक रचनाशीलता के प्रकाश में 'रूपाभ', 'प्रतीक', 'आलोचना', 'कल्पना', 'ज्ञानोदय', 'निकष' आदि मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित आलोचनात्मक लेखों द्वारा साहित्य के नवरूपों, वस्तु एवं भाषा-शिल्प आदि के सम्बंध में पुनर्विचार किया जाने लगा। युगानुरूप दृष्टिकोण के अनुसार अज्ञेय, डा० नगेन्द्र, इलाचंद जोशी, मुक्तिबोध, लक्ष्मीकांत वर्मा, डा० भारती, डा० जगदीशचंद्र गुप्त, अमृतराय, शंभुनाथसिंह, डा० रघुवंश जैसे प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने सामयिक विचार-बोधों नव मानव-मूल्यों एवं नव साहित्य के निकष पर नये मानदण्डों और सिद्धान्तों को अनेक पत्रिकाओं, लेखों, वक्तव्यों एवं पुस्तकों के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया है।[1] इन नये साहित्यकारों ने प्राचीन मानदण्डों का तिरस्कार, करते हुए फ्रायडादि से प्रभावित व्यक्ति-स्वातंत्र्य की भावना पर विशेष बल दिया है। आधुनिक जीवन की जटिलता, बौद्धिकता एवं क्षणवादी दृष्टिकोण के प्रभाव के कारण इनका साधारणीकरण में विश्वास नहीं है।[2] डा० नगेन्द्र जी की रसवादी मनोवैज्ञानिक आलोचना इसी कोटि की है। वे साहित्य को वैयक्तिक चेतना मानते हुए उसके रसास्वादन के लिए उसी साहित्यकार की वैयक्तिक चेतना या अनुभूति के साथ पाठक के साधारणीकरण की शर्त लगाते हैं।[3] इसी प्रकार सप्तकों के कतिपय कवि काव्य में रस या साधारणीकरण की अपेक्षा 'प्रभाव' या चमत्कार को ही प्रधानता देते हैं। अज्ञेय[4], इलाचंद जोशी[5] आदि के नये मानदण्ड भी व्यक्ति-स्वातंत्र्यवादी अथवा अन्तश्चेतनावादी मनोविज्ञान पर

1- इस क्षेत्र में प्रयोग-मान्य साहित्यिक संस्था 'परिमल' द्वारा आयोजित विभिन्न परिगोष्ठियों में पढ़े गये निबंध तथा डा० जगदीश गुप्त एवं विजयदेवनारायण साही जी द्वारा संपादित 'नयी कविता' के अंकों के निबंधों का योगदान विशेष उल्लेखनीय है।

2- डा० जगदीश गुप्त - आज के परिप्रेक्ष्य में रसानुभूति की अपेक्षा 'सह-अनुभूति' की स्थिति को ही अधिक उपयुक्त मानते हैं। दे० - 'नई कविता-अंक-4 'रसानुभूति और सह-अनुभूति' शीर्षक लेख।

3- विचार और अनुभूति- पृ० 17-19

4- 'त्रिशंकु' 'आत्मनेपद' आदि।

5- 'साहित्य-सर्जना'

आधारित हैं। इसी प्रकार श्री जोशी जी की अन्य कृतियाँ यथा- `विवेचना`, `विश्लेषण`, `देखा-परखा` आदि भी मनोवैज्ञानिक आलोचना का रूप प्रस्तुत करती हैं। डा0 देवराज उपाध्याय भी मनोवैज्ञानिक आलोचक हैं।

निष्कर्ष :

इस प्रकार आज की आलोचना अधिक तर्क एवं बौद्धिक चेतना से सम्पन्न है। उसने व्यक्ति-बोध को उद्घाटित करने के अनेक नये आयाम एवं दृष्टिकोण प्रदान किये हैं। किन्तु प्रयोगवादी समीक्षा का प्रधान सम्बन्ध कविता से रहा है। काव्य सम्बंधी सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक चर्चा ही उसमें अधिक हुई है। उपन्यास, कहानी, नाटक आदि के सम्बंध में भी प्रयोगवादी आलोचकों ने विचार किया है। किन्तु बहुत कम।"[1]

1- डा0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय- `द्वितीय महासमरोत्तर(हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 306।